जीवन का सद्व्यय

संपादक

सर्वप्रथम देव-पुरस्कार-विजेता
श्रीदुलारेलाल
(सुधा-संपादक)

गंगा-पुस्तकमाला का ९९वाँ पुष्प

जीवन का सद्व्यय

[Economy of Human Life
का
हिंदी-अनुवाद]

अनुवादकर्ता
हरिभाऊ उपाध्याय
सह० संपादक हिंदी-नवजीवन

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

तृतीयावृत्ति

सं० २००४] [मूल्य २॥)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. दिल्ली-ग्रंथागार, चर्खेवालाँ, दिल्ली
२. प्रयाग-ग्रंथागार, ४०, क्रास्थवेट रोड, प्रयाग
३. काशी-ग्रंथागार, मच्छोदरी-पार्क, काशी
४. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
५. साहित्यरत्न-भंडार, सिविल लाइंस, आगरा
६. हिंदी-भवन, अस्पताल-रोड, लाहौर
७. एन्० एम्० भटनागर एँड ब्रादर्स, उदयपुर
८. दक्षिण-भारत हिंदी-प्रचार-सभा, त्यागरायनगर, मदरास
९. श्रीकन्हैयालाल, त्रिपोलिया-बाज़ार, जयपुर
१०. हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर, हीराबाग़, पो० गिरगाँव, बंबई

नोट—हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

अनुवादकर्ता के दो शब्द

इस अनंत विश्व-समुद्र में मनुष्य का जीवन एक नौका की तरह है। कर्म-रूपी तख्तों से वह बनी है, पुरुषार्थ उसका पतवार है, और विवेक नाविक। इन्हीं की सचेतता और दूर-दर्शिता से वह बड़े-बड़े तूफानों—क्रांतिशील बनानेवाली आकस्मिक विकट घटनाओं—और महान् हिंस्र जलचरों—शोक, दुःख और संकटों—पर विजय प्राप्त करती हुई अपने लक्ष्य पर पहुँचती है। कर्तव्य-पालन में उपेक्षा, शिथिलता और विलंब हुआ नहीं कि वह गंभीर सागर-गर्भ में, चिरकाल के लिये, विलीन हुई नहीं।

मानवीय-जीवन कल्पवृक्ष की तरह वांछित-फलदायी और जल-बुदबुद की तरह क्षण-भंगुर है। एक बार जहाँ हाथ से निकला कि पुनः उसकी प्राप्ति सहज नहीं। 'दुर्लभं मानुषं जन्म।' इसीलिये वह अमूल्य है। संसार की कोई वस्तु न इतनी उपयोगी है, न इतनी दुर्लभ और न इतनी अमूल्य।

ऐसे अनमोल, पर क्षण-भंगुर और फिर भी दुष्प्राप्य वस्तु का उपयोग किस तरह करना चाहिए—मनुष्य-जीवन का सद्व्यय किस तरह करना चाहिए—यह जानना प्रत्येक नर-देह-धारी का परम कर्तव्य है। प्रस्तुत पुस्तक के विद्वान्, तत्ववेत्ता,

बहुदर्शी और अनुभवी लेखक ने इस पुस्तक के द्वारा वही
मार्ग संसार को दिखाया है। कहा है—

अनन्तपारं किल शब्दशास्त्रम्
स्वल्पं तथायुर्बहवश्च विघ्नाः;
सारं ततो ग्राह्यमपास्य फल्गु
हंसैर्यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्।

अर्थात्, शास्त्र तो अनंत और अपार हैं, पर जीवन है
थोड़ा-सा। उसमें भी बड़े-बड़े विघ्न हर घड़ी उपस्थित रहते हैं।
इसलिये जिस तरह हंस पानी से दूध निकालकर पी लेता है,
उसी तरह हमको भी उनसे सार-मात्र ग्रहण कर लेना चाहिए।
इसी के अनुसार लेखक ने इस ग्रंथ में जीवन को सन्मार्ग में
लगाने और सफल बनानेवाले बहुतेरे सिद्धांतों का नवनीत
निकालकर हमारे सामने रख दिया है।

जिस पुस्तक का यह अनुवाद है, उसके मुख-पृष्ठ पर लिखा
है—Written by an ancient Brahmin. यह अँगरेज़ी
पुस्तक पहले-पहल सन् १७५१ में प्रकाशित हुई, और १८१२ ई०
तक अँगरेज़ी में इसके पाँच संस्करण हो गए थे। अँगरेज़ी-
लेखक कहता है कि मैंने चीनी से इसका उल्था किया है। इन
बातों से यह अनुमान होता है कि मूल-पुस्तक संस्कृत या प्राकृत
में किसी ब्राह्मण (अँगरेज़ी-अनुवादक के मतानुसार Brahmin
Dandmis)-आचार्य के द्वारा लिखी गई होगी। योरपियन
लेखकों ने ब्राह्मण दंडमिस के द्वारा सिकंदर के नाम लिखे

गए प्रसिद्ध पत्र का उल्लेख किया है। चीन के कुछ विद्वानों का मत है कि यह चीनी तत्ववेत्ता कनफ्यूशियस या लेकिन (Leo-Kiun) की लिखी हुई है; परंतु अँगरेज़ी-अनुवादक और क्यू-त्स्यू (Cao-tsou) नाम का विद्वान, जिसने पहले-पहल अर्थ लगाया, इसे किसी ब्राह्मण ही की लिखी मानते हैं।

अँगरेज़ी पुस्तक में लिखा है कि चीनी-भाषा में इस पुस्तक की प्रति लामाओं के एक प्रसिद्ध मंदिर में प्राप्त हुई थी। बरसों तक लामा लोग न इसका अर्थ समझ पाए, न कर पाए। अँगरेज़ी-पुस्तक से यह भी मालूम होता है कि अँगरेज़ी-अनुवादक ने स्वकृत अनुवाद को अपने स्वामी अर्ल ऑफ़ (लॉर्ड) चेस्टरफ़ील्ड को तोहफ़े के रूप में भेंट किया था।

परंतु इस ग्रंथ के 'रमणी', 'पति' और 'मानवीय आत्मा, उसकी उत्पत्ति और धर्म'—इन अध्यायों में जो विचार प्रकट किए गए हैं, उनसे मुझे शक होता है कि यह ग्रंथ किसी प्राचीन संस्कृत-पंडित या ब्राह्मण का लिखा नहीं हो सकता। 'रमणी', 'पति' इन दो अध्यायों में प्रदर्शित विचार यद्यपि प्राचीन आर्य-आदर्श के प्रतिकूल नहीं हैं, तथापि लेखन-शैली और भावों के प्रकाशन की कोमलता में आधुनिक संस्कारों की गंध ज़रूर आती है, जो हठात् योरपियन हृदय की याद दिला देती है। आत्मा-संबंधी अध्याय तो पश्चिम के अपरि-पक्व विचारों से भरा है। पृष्ठ ८८ पर लेखक मुर्गे, कुत्ते और बकरे की आत्मा के संबंध में लिखता है—जब वे मरते हैं, तब

इनकी आत्मा तो पंचत्व को प्राप्त हो जाती है, अकेली तेरी (मनुष्य की) आत्मा ही पीछे बच रहती है पृष्ठ ८७ में लिखा है—यद्यपि वह (आत्मा) तेरे पश्चात् भी क़ायम रहेगी, तथापि यह मत समझ कि वह तुझसे पहले उत्पन्न हुई है; तेरे शरीर की रचना के साथ ही उसका ढाँचा प्रकट हुआ है। ये तो स्पष्टतः क्रिश्चियन-विचार मालूम पड़ते हैं। 'सोऽहम्', 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म', 'एकोऽहं द्वितीयो नास्ति' इन आर्य सिद्धांतों के विरोधी वचन किसी प्राचीन ब्राह्मण के कैसे हो सकते हैं? अतएव या तो मूल-पुस्तक ही अँगरेज़ी में लिखी गई है, और प्रचार आदि के ख़याल से तथा उस काल के समाज की मनोदशा के अनुरूप उसका चीनी से अनूदित होना, और उसका मूल संस्कृत में होना, लिख दिया गया है, या अपने धर्म और देश के विचारों और सिद्धांतों के अनुसार इस अध्याय के विचारों में अँगरेज़ी-अनुवादक ने परिवर्तन कर दिया है। अनुवाद का श्रेय चीनी-भाषा को इसलिये दिया गया होगा कि उस समय इँगलैंड-निवासियों की चीन के संबंध में बड़ी जिज्ञासा और उत्कंठा रहती थी। 'लेटर्स ऑफ़ जान चायनामैन' तथा गोल्ड-स्मिथ के उदाहरण इसके लिये पर्याप्त हैं। उन दिनों चीन की चर्चा इँगलैंडवासियों का प्यारा विषय हो गई थी।

पर अधिक विचार करने पर यह ग्रंथ स्वयं लॉर्ड चेस्टर फ़ील्ड का ही लिखा मालूम होता है। लॉर्ड चेस्टर फ़ील्ड ऐसे नैतिक विषयों के ग्रंथ-लेखक तो प्रसिद्ध ही हैं, इसकी शैली भी

उनकी शैली से मिलती-जुलती है। कितने ही अँगरेज़-लेखकों ने संस्कृत-पंडितों की भाषा-शैली का अनुकरण करना एक फ़ैशन-सा बना लिया है। जिन्होंने अध्यापक वेन के ग्रंथ पढ़े हैं, वे इस बात को सहज ही मान लेंगे। अँगरेज़ी-अनुवादक ने न तो स्वयं अपना नाम कहीं लिखा है, न चीनी या संस्कृत-ग्रंथ का। यह मौनावलंब रहस्य-पूर्ण है, और हमें इसी नतीजे पर पहुँचाता है कि इस ग्रंथ के कर्ता और कोई नहीं, स्वयं लॉर्ड चेस्टर फ़ील्ड हैं।

पर यह बात गौण है। मुख्य बात है ग्रंथ की उपयोगिता। वह इसी बात से सिद्ध है कि अब तक फ़्रेंच, लैटिन, जर्मन, इटालियन और वेल्स आदि योरप की समस्त भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है, तथा कई प्रसिद्ध चित्रकारों ने इस पर चित्र भी बनाए हैं। भारत में महामना मालवीयजी तो इसके पीछे पागल हैं। उन्होंने सैकड़ों युवकों को इसके पढ़ने और मनन करने की सलाह दी है। मुझे इसके हिंदी-अनुवाद के लिये उन्होंने ही उत्साहित किया. और इसकी प्रस्तावना भी उन्हीं के कर-कमलों से लिखी जानेवाली थी; पर उनकी कार्य-बहुलता और पुस्तक के शीघ्र प्रकाशित होने की आवश्यकता ने इस अनुवाद को इस सौभाग्य से वंचित रक्खा। बिहार के नेता बाबू राजेंद्रप्रसाद जी इसके संबंध में लिखते हैं—

"यह ग्रंथ छोटा, पर अमूल्य है। यह उन रत्नों में है, जिसकी क़ीमत कभी घट नहीं सकती। यह महान् धर्म-ग्रंथों की

तरह मनुष्य के चरित्र-संगठन में बराबर सहायता देता रहेगा। ××× इस ग्रंथ के प्रायः प्रत्येक वाक्य को हम आज सत्याग्रह-संग्राम में काम ला सकते हैं, और इससे शिक्षा ग्रहण करके जहाँ तक उसका अनुकरण हम कर सकते हैं, वहाँ तक हमें सफलता भी होगी। महात्मा गांधीजी ने जो नया रास्ता हिंदोस्तान को बताया है, वह इसी अंश में नया है कि हम अपने पूर्वजों के विचारों को भूल गए हैं। इस छोटे ग्रंथ से प्रमाणित हो जायगा कि ये विचार केवल हमारे पूर्वजों के ही नहीं, वरन् समस्त धर्मोन्नत जातियों के थे, और होने चाहिए। जिस प्रकार हम धर्म-ग्रंथों का पाठ करते हैं, उन पर मनन और उनका अनुकरण करते हैं, उसी प्रकार इस ग्रंथ का भी पठन, मनन और अनुकरण करना चाहिए। विशेष कर यदि किसी ग्रंथ द्वारा चरित्र-गठन कराने की आशा रक्खी जाती हो, तो इससे बढ़कर विद्यार्थियों के लिये दूसरा ग्रंथ नहीं मिल सकता।"

मुझे अपनी तरफ़ से इसके विषय में सिर्फ़ इतना ही कहना है कि इसका अध्ययन और अनुवाद करने पर मुझे बड़ी तफ़रीह, बड़ा आनंद और बड़ा उत्साह मिला। यह पुस्तक मनुष्य-मात्र के लिये पथ-प्रदर्शक और कर्तव्य की कुंजी है। इसकी सूक्तियाँ हृदय पर गहरा असर डालती हैं। मैं अपने मित्र श्रीगणेशशंकरजी विद्यार्थी (प्रताप-संपादक) को धन्यवाद दिए बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने ऐसी अनमोल पुस्तक का अनुवाद करने के लिये मुझे प्रेरित किया।

अनुवादकर्ता के दो शब्द

इसके अनुवाद में मैंने भाषा और भाव, दोनों के सौंदर्य पर भरसक समान दृष्टि रक्खी है। जहाँ निर्वाह होता देखा, वहाँ प्रायः शब्दशः अनुवाद किया, और जहाँ आवश्यक जान पड़ा, वहाँ अधिक स्वतंत्रता का उपयोग किया। रही सफलता, सो इसकी जाँच के अधिकारी पाठक हैं, अनुवादक नहीं। वह तो "पत्रं, पुष्पं फलं, तोयम्" जो कुछ उससे बन पड़ा, पाठकों के हाथों में प्रेम-पूर्वक सौंपता है।

अनुवाद करते समय कुछ शंकाओं का समाधान करने के लिये मैं अपने मित्र श्रीविनायक सीताराम सर्वटे को, मूल के साथ अनुवाद को दोहराने में सहायता देने के लिये अपने भ्राता शंकर हरि दुबे तथा मित्र सदाशिव यशवंत सोलापुरकर को, एवं कुछ उपयोगी सूचनाएँ करने के लिये अपने साथी श्रीयुत वैजनाथ जगन्नाथ महोदय को हार्दिक धन्यवाद देकर अपने दो शब्द समाप्त करता हूँ।

सत्याग्रहाश्रम, साबरमती;
मार्गशीर्ष-वदी ६, १९८० वि० } हरिभाऊ उपाध्याय

उपोद्घात

हे मृत्यु-लोक-निवासियो ! साष्टांग नमन करो, और शांति के साथ श्रद्धा-पूर्वक ईश्वरीय उपदेश ग्रहण करो।

जहाँ तक सूर्य का प्रकाश पहुँचता और वायु बहती हो, तथा सुनने के लिये कान और बोध होने के लिये मन हो, वहाँ तक जीवन के नियमों का ज्ञान पहुँचे, तथा सत्य के सिद्धांतों का आदर और अनुसरण हो।

ईश्वर ही समस्त वस्तुओं का उद्गम-स्थान है। उसकी शक्ति असीम और ज्ञान अनंत है। उसके वात्सल्य और सौजन्य का कभी अंत नहीं होता।

वह मध्य भाग में अपने सिंहासन पर बैठता है। इससे सारा विश्व उसके श्वासोच्छ्वास से प्राण-वायु अथवा चैतन्य ग्रहण करता है।

वह अपनी उँगलियों से तारकाओं को स्पर्श करता है, और वे आह्लाद-पूर्वक भ्रमण करने लगती हैं।

वह वायु-रूपी पंखों के द्वारा देश-देशांतर में विचरण करता और अनंत विश्व में जहाँ चाहे, अपनी इच्छा को प्रेरित करता है।

व्यवस्था, दया और सुंदरता की सृष्टि उसी के हाथों हुई है।

उसके समस्त कार्यों में ज्ञान की ध्वनि गूँज रही है; परंतु मानव-बुद्धि उसको पहचान नहीं पाती।

मनुष्य को बुद्धि को स्वप्न की तरह ज्ञान का आभास-मात्र होता है। वह मानो अंधकार में देखता है, तर्क करता है; पर धोखा ही खाता है।

परंतु ईश्वर का ज्ञान दिव्य प्रकाशमय है। वह तर्क-रहित है; उसका अंतःकरण सत्य का स्रोत है।

न्याय और दया तो उसके सिंहासन के सम्मुख खड़ी रहती है। उसका मुख-मंडल उपकार-शीलता और प्रेम से आलोक-मय रहता है।

उसके तेज की समता करनेवाला कौन है? वह सर्व-शक्तिमान् है। उसकी सत्ता की स्पर्द्धा कौन कर सकता है? क्या कोई उसके ज्ञान की बराबरी कर सकता है? क्या सौजन्य में किसी की तुलना उसके साथ हो सकती है?

हे मनुष्य, उसी ने तुझे पैदा किया है। उसी के संकेत से इस मृत्यु-लोक में तेरा स्थान नियुक्त हुआ है। तेरे मन की विविध शक्तियाँ उसी की दयालुता की देन हैं। तेरा शरीर-चमत्कार उसी की किरणों का कौशल है। अतएव उसका आदेश सुन; क्योंकि वह श्रेयस्कर है। जो उसकी आज्ञा का पालन करेगा, उसकी आत्मा को निस्संदेह शांति मिलेगी।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

विषय-सूची

(पूर्वार्द्ध)

(उत्तरार्द्ध)

व्यक्तिगत मानवीय कर्तव्य

पहला अध्याय

विचार

हे मनुष्य, आत्मचिंतन कर—यह सोच कि तेरे जीवन धारण करने का उद्देश क्या है ?

अपनी शक्तियों का ध्यान कर; अपने अभावों और संबंधों पर ध्यान रख। इससे तुझे जीवन के कर्तव्यों का ज्ञान होगा और अपने समस्त कार्यों में मार्ग दिखाई देता रहेगा।

जब तक अपने शब्दों को तौल न ले, मुँह से कोई बात न निकाल; जो कार्य तू करना चाहता है, उसके संबंध में अपनी धुन और लगन की जाँच जब तक न कर ले, तब तक कोई काम न कर। इसका फल यह होगा कि अकीर्ति तुझसे सदा दूर रहेगी, शर्मिंदगी तेरे घर के लिये बेगानी चीज़ होगी, पश्चात्ताप तेरे निकट न आवेगा, और न शोक की छाया तेरे कपोलों पर दिखाई देगी।

जो विचार-हीन है, वह अपनी जिह्वा पर अंकुश नहीं रख पाता, जो मन आता है, वही वह बैठता है, और फिर

अपने ही मूर्खता-भरे शब्दों से फँस झगड़े में पड़ जाता है।

जो मनुष्य विना इस बात को सोचे या देखे कि दूसरी ओर क्या है, जल्दी में दौड़ कर किसी चहार-दीवारी को फाँदता है, वह उसके दूसरी तरफ़ के गड्ढे में गिर सकता है। यही हाल उस मनुष्य का होता है, जो विना नतीजा सोचे किसी काम को एकदम कर बैठता है।

इसलिये विचार की पुकार पर कान दे। उसके शब्द मानों बुद्धिमत्ता के शब्द हैं; उसके बताए मार्गों द्वारा तू सुरक्षित रहेगा, और अंत को सत्य से तेरी भेंट हो जायगी।

दूसरा अध्याय

विनय

अपने ज्ञान के गर्व में मस्त रहनेवाले मनुष्य ! तू है कौन चीज़ ? अरे ! अपने प्राप्त किए गुणों पर शेखी मारता है।

ज्ञानी बनने की पहली सीढ़ी यह है—तू अपने को अज्ञानी समझ। यदि तू दूसरे की दृष्टि में अपने को मूर्ख न ठहराना चाहता हो, तो अपने ज्ञानी होने की सनक को छोड़ दे।

जिस प्रकार एक सादी साड़ी ही सुंदरी स्त्री का सर्वोत्कृष्ट अलंकार है, उसी प्रकार ज्ञान का सबसे बड़ा भूषण सद्-व्यवहार है।

विनयशील मनुष्य के भाषण से सत्य दमक उठता है, और जिस संकोच के साथ वह बातचीत करता है, उससे उसकी भूलों का दोष, दोष-सा नहीं मालूम होता।

वह केवल अपने ही ज्ञान पर भरोसा नहीं रखता; बल्कि मित्रों के परामर्श पर भी विचार करता, और लाभ का भागी होता है।

वह अपनी प्रशंसा सुनने से मुँह मोड़ लेता है, उस पर विश्वास नहीं करता; अपनी पूर्णता का ज्ञान होने में उसका नंबर आख़िरी होता है।

जिस प्रकार बुरके से किसी युवती के मुखड़े की सुंदरता बढ़ जाती है, उसी प्रकार विनय की छाया से सद्गुण भी भूषित होते हैं।

उस घमंडी आदमी को तो देख, ज़रा उस व्यर्थ के अभिमानी की ओर तो देख, कैसे बढ़िया कपड़े पहनता, राजमार्गों में किस तरह घूमता, कैसे अगल-बगल झाँकता-ताकता और लोगों की दृष्टि को अपनी ओर खींचता है?

वह अपना सिर ऊँचा उठाकर ग़रीबों को तुच्छ दृष्टि से देखता है। अपने से छोटे लोगों के साथ वह बुरी तरह से पेश आता है। इसके बदले में, जो लोग उससे श्रेष्ठ हैं, वे उसके अभिमान और मूर्खता को गिरी नज़र से देखते और उपहास करते हैं।

वह दूसरों के मत को कोई चीज़ नहीं समझता; वह दस,

अपने ही राम को सब कुछ समझता और अंत को चक्कर में पड़ जाता है।

वह अपनी कल्पना-शक्ति के अभिमान में फूला नहीं समाता; दिन-भर अपने ही विषय की बातें करने और सुनने में मग्न रहता है।

वह अपनी प्रशंसा को अघोरी की तरह पी जाता और इसके बदले में खुशामदी लोग स्वयं उसे चाट जाते हैं।

तीसरा अध्याय

व्यासंग

जो दिन बीत चुके, वे अब सदा के लिये चले गए, और आनेवाले दिन, संभव है, न आवें। इसलिये तुझे चाहिए कि वर्तमान समय का उपयोग कर ले, न भूत का अफ़सोस कर, और न भविष्यत् पर भरोसा।

यह क्षण तेरा है। इसके बाद का क्षण भविष्य के गर्भ में है। तू नहीं जानता कि उसमें से क्या प्रकट होनेवाला है।

इसलिये जिस किसी काम के करने का निश्चय कर, उसे शीघ्र कर डाल। जो काम सवेरे करना है, उसे शाम पर मत छोड़।

आलस्य अभावों और कष्टों का पिता है, पर सद्गुण के लिए किए गए परिश्रम से आनंद की उत्पत्ति होती है।

उत्कर्ष और सफलता उद्योगशील मनुष्य के अर्दली हैं। उद्यमशीलता की भुजाओं के सामने अभाव परास्त हो जाता है।

बता तो, वह कौन है, जिसने द्रव्य का उपार्जन किया है, सत्ताधारी हुआ है, जो सम्मान से भूषित है, नगर में जिसकी कीर्ति छा रही है, और जो राजदरबार में स्थान पाता है? वह कौन है, जिसने अपने घर से आलस्य को मार भगाया है, और दीर्घसूत्रता से कह दिया है कि तू शत्रु है?

देख, वह तड़के उठता है, रात को देर से सोता है, ध्यान में अपना मन और कार्य में अपना तन लगाता है, और दोनो के स्वास्थ्य की रक्षा करता है।

पर दीर्घसूत्री मनुष्य स्वयं अपने लिये भी भारभूत है। उसका समय उसके ही सिर का बोझ है। वह किसी तरह अपना समय बिताता फिरता है; पर यह नहीं जानता कि उसे क्या करना चाहिए।

उसका जीवन, बादल की छाया की तरह, निकल जाता है, और वह अपनी स्मृति के लिये कोई चिह्न पीछे नहीं छोड़ जाता।

व्यायाम न करने के कारण उसका शरीर रोग-ग्रस्त रहता है। वह यदि काम करना चाहे, तो उसमें हिलने-डुलने की भी शक्ति नहीं। बस, उसका मन अंधकारमय हो जाता है; विचार कुंठित हो जाते हैं। वह ज्ञान की लालसा तो लगाए रहता है, किंतु उसके लिये उद्योग नहीं कर पाता। वह बादाम

खाना चाहता है; पर उसके छिलके फोड़ने से दूर भागता है।

उसके घर में अव्यवस्था का साम्राज्य रहता है; उसके नौकर-चाकर फ़िजूलखर्च एवं गुस्ताख़ और लापरवाह हो जाते हैं। वह विनाशोन्मुख हो जाता है; अपनी आँखों से उस विनाश को देखता, कानों से उसका शब्द सुनता, दुष्परिणाम को समझता और उससे बचने की इच्छा भी करता है; किंतु निश्चय नहीं कर पाता। अंत को विनाश, एक तूफ़ान की तरह, उस पर झपट पड़ता है, और लज्जा तथा पश्चात्ताप मसान तक उसका पीछा नहीं छोड़ते।

चौथा अध्याय

ईर्ष्या

यदि तेरी आत्मा प्रतिष्ठा की प्यासी है। यदि तेरे कानों को प्रशंसा के उद्गारों से सुख होता है, तो जिस धूलि से—भौतिक पदार्थों से—तेरा पिंड बना है, उससे ऊपर उठ, और किसी उच्च तथा प्रशंसनीय वस्तु को अपना लक्ष्य बना।

इस वट-वृक्ष को देख, जिसकी शाखाएँ अब आकाश तक फैल गई हैं। यह किसी दिन पृथ्वी के गर्भ में एक छोटे-से बीज के रूप में था।

तू जो कुछ व्यवसाय करता हो, उसमें सर्वोच्च बनने की कोशिश कर। सत्कार्य में किसी को अपने से आगे न बढ़ने दे। किंतु दूसरे की योग्यता या गुणों से द्वेष न कर, वरन् स्वयं अपनी ही बुद्धि की उन्नति कर।

प्रतिस्पर्धियों को बुरे और नीच उपायों से दबाने की इच्छा से घृणा कर; उनसे श्रेष्ठ बनकर ही अपने को ऊँचा उठाने का प्रयत्न कर, जिससे तुझे इस उच्चता की लड़ाई में यदि सफलता न मिले, तो सम्मान अवश्य प्राप्त हो।

सात्त्विक ईर्ष्या में मनुष्य की वृत्ति उच्च होती है। उसे अपनी कीर्ति की चाह लगी रहती है, और बड़े आह्लाद-पूर्वक एक दौड़बाज की तरह वह अपना मार्ग-क्रमण करता है।

दबाए जाने पर भी वह ताड़ के पेड़ की तरह ऊँचा ही उठता चला जाता और आकाश में विहार करनेवाले गरुड़ की तरह ऊँची उड़ान भरता हुआ भगवान् भुवन-भास्कर के तेज पर भी अपनी दृष्टि रोपता है।

वह रात को स्वप्न में महान् पुरुषों के आदर्शों को देखता और दिन-भर बड़े हर्ष के साथ उनका अनुसरण करता है।

वह बड़े-बड़े मंसूबे बाँधता और प्रसन्नता-पूर्वक उनको पूर्ण करता है। इससे उसकी कीर्ति चारो ओर छा जाती है।

परंतु मत्सरी मनुष्य का हृदय कीने और कटुता से भरा रहता है। उसकी जबान जहर उगलती है; वह अपने सहवासी के उत्कर्ष को देखकर बेचैन हो जाता है।

वह पश्चात्ताप करता हुआ अपनी झोपड़ी में बैठा रहता है। दूसरों का भला उसे अपनी हानि मालूम होती है।

घृणा और मत्सर उसके हृदय को नोच-नोचकर खाया करते हैं। उसके दिल को कभी चैन नहीं मिलती।

स्वयं उसके हृदय में भलाई के प्रति प्रेम नहीं होता, इसलिये उसे यह विश्वास बना रहता है कि और लोग भी मेरी ही तरह हैं।

जो उससे आगे बढ़ते हैं, उन्हें वह समझता है कि कुछ नहीं हैं। उनके समस्त कार्यों को वह सबके सामने बड़े भद्दे रूप में पेश करता है।

वह हमेशा दूसरों के बुरे कामों की ताक में रहता है; परंतु मनुष्य का अतिद्वेष उसका पीछा नहीं छोड़ता, और वह स्वयं मकड़ी की तरह अपने ही बनाए जाल में फँस जाता है।

पाँचवाँ अध्याय

दूरदर्शिता

दूरंदेशी की सीख को सुन; उसकी सलाहों पर ध्यान दे, और उन्हें अपने हृदय में अंकित कर। उसके सिद्धांत सार्वभौमिक हैं। समस्त सद्गुण उसी के सहारे रहते हैं। वह मनुष्य की पथ-दर्शिका सहचरी है।

अपनी ज़बान पर लगाम चढ़ा; अपने होठों पर पहरा

विटाल; क्योंकि कहीं अपने ही शब्दों की बदौलत तुझे अपनी शांति न खो देनी पड़े।

बेचारे लूले-लँगड़ों को देखकर जो उनका उपहास करते हैं, उन्हें सावधान रहना चाहिए कि कहीं वे भी पंगु न हो जायँ। जो दूसरों की दुर्बलताओं का वर्णन बड़े आनंद के साथ करता है, उसे स्वयं अपने ही छिद्रों की बात बड़े दुःख के साथ सुननी पड़ती है।

अधिक बक-बक करने से पश्चात्ताप करना पड़ता है। मौनावलंबन से मनुष्य की रक्षा होती है।

बकवादी मनुष्य समाज के लिये एक आफ़त होता है। कान उसकी बक-बक सुनते-सुनते थक जाते हैं। जब वह हड़-हड़ाकर बातें करने लगता है, तब उसके आगे दूसरे की ज़बान बंद हो जाती और बातचीत का मज़ा किरकिरा हो जाता है।

अपने विषय में बड़ी-बड़ी डींगें मत हाँक; क्योंकि इससे तू तिरस्कृत होगा; दूसरों का मजाक मत उड़ा, ऐसा करना ख़तरनाक है।

कड़वी हँसी मित्रता में विष के समान है। जो अपनी जिह्वा को नहीं रोक सकता, वह कभी मुसीबत में फँसे बिना नहीं रहता।

अपनी स्थिति को देखकर चल। इतना ख़र्च न कर, जितना तू गवारा न कर सके। इससे तू जवानी में कुछ रकम जोड़ सकेगा, और बुढ़ापे में तुझे आराम मिलेगा।

लोभ पाप का मूल है, परंतु मितव्यय सद्गुणों का पालक ।

अपने ही काम में ध्यान लगा, सारी दुनिया की चिंता न कर । यह पागलपन है ।

मनोरंजन के साज-सामान जुटाने में मनमाने रुपए न उड़ा; क्योंकि उसको जुटाने में जो कष्ट होते हैं, वे उसके द्वारा प्राप्त होनेवाले सुख से कहीं अधिक हैं ।

अपने उत्कर्ष को इतना उन्मत्त न होने दे कि वह सावधानी की आँखें फोड़ डाले । न प्रचुरता को इतना अधिक मुँह लगा कि वह मितव्यय का हाथ काटने की हिम्मत करने लगे । जीवन के फ़ज़ूलियात में जो बहुत ज्यादा ग़र्क रहता है, उसे जीवन की आवश्यक वस्तुओं के लिये ज़िंदगी-भर सिर धुनना पड़ता है ।

दूसरों के अनुभवों से अक्ल सीख । उनके ऐबों को देखकर अपनी ग़लतियों को सुधार ।

जब तक तू किसी मनुष्य को आज़मा न ले, तब तक उस पर विश्वास न कर । पर अकारण ही किसी पर अविश्वास भी न कर । ऐसा करना सरासर अनुदारता है ।

जब तू यह परख ले कि अमुक आदमी ईमानदार है, तो उसे अपने हृदय में ख़ज़ाने की तरह हिफ़ाज़त से रख । वह अमूल्य रत्न है ।

जो मनुष्य टकों के लिये अपनी जान देता है, उसकी

कृपाओं को ठुकरा दे। उसे अपने लिये एक फंदा समझ। याद रख, उसके बंधन से कभी छुटकारा न पा सकेगा।

कल जिसकी ज़रूरत होगी, उससे आज ही काम मत ले। जिसके लिये दूरदर्शिता से कुछ प्रबंध किया जा सकता है, अथवा खबरदारी से जिसका बचाव हो सकता है, उसे भवितव्यता की आशा पर मत छोड़।

केवल दूरदर्शिता से भी अचूक सफलता की आशा न कर; क्योंकि दिन नहीं जानता कि रात क्या कर दिखानेवाली है।

मूर्ख हमेशा अभागी नहीं होता, और न ज्ञानी सदैव भाग्यवान्; पर मूर्ख को कभी पूर्ण आनंद नहीं मिला, और न ज्ञानी को कभी पूर्ण सुख ही।

छठा अध्याय

धैर्य

इस जगत् में जन्म धारण करनेवाले प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन में सुख दुःख, दुर्दैव, अभाव, कष्ट और हानि का थोड़ा-बहुत भाग मिले विना नहीं रहता।

इसलिये मुसीबत के पुतले! बेहतर है कि तू अपने मन के आस-पास धैर्य और सहनशीलता की क़िलेबंदी शीघ्र कर ले। इस तरह तू अपने भाग्य में बदी हुई मुसीबत के दबाव से अपनी रक्षा निश्चय के साथ कर सकेगा।

जिस प्रकार ऊँट रेगिस्तान में परिश्रम, गरमी और भूख-प्यास, सब सहन करता हुआ बराबर आगे ही बढ़ता चला जाता है, शिथिल होकर बैठ नहीं जाता, उसी प्रकार मनुष्य का धैर्य भी हर तरह की मुसीबत के समय उसे सहारा पहुँचाता है।

तेजस्वी मनुष्य भाग्य की कुदृष्टि को कोई चीज़ नहीं समझता। उसकी आत्मा की महत्ता को कभी कोई नीची निगाह से नहीं देख सकता।

वह अपने सुख को उसके हास्य पर—उसकी कृपा पर—अवलंबित नहीं रहने देता। इसीलिये उसके तिरस्कार से वह भयभीत नहीं होता।

समुद्र-तटस्थ चट्टान की तरह वह दृढ़ता-पूर्वक डटा रहता है—लहरों की टक्करों से डगमगाता नहीं।

पर्वत के शिखर की तरह उसका मस्तक ऊँचा उठ जाता है। दुर्दैव के बाण उसके चरणों तक ही पहुँच कर रह जाते हैं।

संकट के समय हृदय की दृढ़ता उसकी रक्षा करती है, मन की स्थिरता उसे सहारा देती है।

समर-भूमि में प्रवेश करनेवाले वीर पुरुष की तरह वह जीवन के संकटों का मुक़ाबला करता और विजय-श्री पाकर लौटता है।

जब दुर्दैव उसे दबाने लगता है, तब उसकी शांति उसके बोझ को हलका करती है, उसका निश्चय दुर्दैव को दबा देता है।

परंतु जो आदमी दुर्दैव से डरकर थर-थर काँपने लगता है, उसे लज्जित होना पड़ता है।

दरिद्रता के सामने दुम दबाने से वह नीच लोगों की श्रेणी में आ जाता है; दब्बू बनकर अपमान सहन करके मानो वह विपत्तियों को निमंत्रण देता है।

जिस प्रकार घास के तिनके हवा के झोंके से हिलने लगते हैं, उसी प्रकार अशुभ की छाया-मात्र से वह काँपने लगता है। और, प्रत्यक्ष संकट के समय तो वह हैरान होकर आरी आ जाता है; दुर्दैव के दिनों में उसका धीरज छूट जाता है, और निराशा उसकी आत्मा को धर दबाती है।

सातवाँ अध्याय

संतोष

ऐ मनुष्य, इस बात को कभी न भूल कि उस अनादि-अनंत ईश्वर के ज्ञान और विधान ही के द्वारा तेरा स्थान इस मृत्यु-लोक में नियुक्त हुआ। वह तेरे अंतःकरण को जानता है, तेरी इच्छाओं के नखरों को भी देखता है; परंतु केवल दया-वश तेरी कुछ प्रार्थनाएँ क़बूल नहीं करता।

फिर भी, सारी उचित इच्छाओं और शुद्ध अंतःकरण से किए जानेवाले सारे प्रयत्नों के लिये, उसकी उपकार-बुद्धि ने, उन बातों के स्वभाव ही में—धर्म ही में—सफलता की संभावना रख छोड़ी है।

तुझे जो बेचैनी मालूम होती है, तथा जिस बदनसीबी के

लिये तू रो रहा है, उनके मूल के उद्गम पर ध्यान दे—अपनी मूर्खता, घमंड और विकृत कल्पना के मूल को खोज।

ईश्वरी योजना पर फ़ज़ूल नाक-भौं न चढ़ा, वरन् अपने हृदय को शुद्ध कर; मन में यह कभी न सोच कि यदि मेरे पास धन होता, सत्ता होती, या अवकाश होता, तो मैं सुखी होता। जान रख, ये सब चीज़ें अपने साथ-साथ अपने मालिकों के लिये विशेष-विशेष असुविधाएँ भी लेती आती हैं।

ग़रीब आदमी धनवानों की चिंताओं और क्लेशों की कल्पना नहीं कर पाता, हुकूमत की कठिनाइयों और झंझटों का अनुभव नहीं करता, और न उसे फ़ुरसत की थकावट का ही ज्ञान होता है। यही कारण है कि वह अपने भाग्य को हमेशा कोसता है।

परंतु किसी मनुष्य के उस सुख को, जो ऊपर-ही-ऊपर दिखलाई पड़ता है, देखकर ईर्ष्या न कर; उसके दिली दुःखों का तुझे पता नहीं है।

थोड़े में संतुष्ट रहना बड़ी भारी बुद्धिमानी है। जो मनुष्य अपनी संपत्ति को बढ़ाता है, वह मानो अपनी चिंताओं को बढ़ाता है। परंतु संतोष वह एक गुप्त धन है, जिसका पता चिंता कभी नहीं पा सकती।

तो भी, यदि तू संपत्ति के मोह में इतना नहीं फँस गया है कि तेरे न्याय, संयम, दयालुता या विनय पर पाला पड़ गया हो, तो स्वयं लक्ष्मी भी तुझे सुख से वंचित नहीं कर सकती।

परंतु इससे तुझे यह सबक़ लेना चाहिए कि शुद्ध और निर्मल आनंद-पान मर्त्य मनुष्य के भाग्य में किसी तरह नहीं बदा।

ईश्वर ने सद्गुण की दौड़ बनाई है। उसे पूरा करना मनुष्य का कर्तव्य और उसका सुख लक्ष्य है। उस तक मनुष्य तब-तक नहीं पहुँचता, जब तक वह दौड़ पूरी न कर ले—मंज़िल तय करके ईश्वर के दरबार में विजय-माला न पहन ले।

आठवाँ अध्याय

संयम

इस मर्त्यलोक में सुख प्राप्त करने का सबसे निकट रास्ता है ईश्वर-दत्त बुद्धि और स्वास्थ्य का उपभोग।

ये प्रसाद तुझे प्राप्त हैं। यदि बुढ़ापे तक तूने इन्हें सुरक्षित रक्खा, तो ये तुझे विलासिता के मोह से बचावेंगे, और उसके लोभ से दूर हटावेंगे।

जब विलासिता अपनी बढ़िया प्रलोभन-सामग्री और स्वादिष्ठ पदार्थ सामने रखने लगती है, जब वह मधुर मुसकान के साथ तेरी ओर निहारती और तुझे आनंद-भोग में मग्न रहने के लिये उकसाती है, तभी समझ ले कि ख़तरे का समय आ पहुँचा। बस, तर्क को उसके पहरे पर मुस्तैदी के साथ खड़ा कर दे।

यदि तूने उसकी—बुद्धि के प्रतिपक्षी की—बातों पर ध्यान दिया, तो समझ ले कि धोखा हुआ और तेरा घात हो जायगा।

जिस आनंद का वह अभिवचन देती है, उसका अंत उन्माद और दुःख हैं; और उसके सुख-साधन अंत को रोग और मृत्यु के दरवाज़े पर ले जाते हैं।

विलासिता की दावत को देख, उसके निमंत्रित मेहमानों पर नज़र डाल, और उन लोगों को भी निहार, जो उसकी मुसकान पर मुग्ध होकर मोह-जाल में फँस गए हैं।

क्या वे दुर्बल नहीं दिखाई देते? क्या वे रोगी नहीं हैं? क्या वे निर्वीर्य नहीं हैं?

उनके आनंदोपभोग का वह अल्प समय भी अंत को बीत जाता है, और उसके बाद खिन्नता और कष्ट के जी उबा देने-वाले दिन आते हैं। देख तो सही, इस विलासिता ने उनकी क्षुधा को कैसा भ्रष्ट और अरुचिकर बना दिया है, जिससे उन्हें अब उसके बढ़िया-से-बढ़िया पकान्न की ज़रा भी इच्छा नहीं होती। वे खुद अपने आराध्य देव के ही शिकार हो गए। यह एक ईश्वर-नियुक्त न्याय और स्वाभाविक परिणाम है, जो ईश्वर के प्रसाद का दुरुपयोग करनेवालों को दंड-रूप में मिलता है।

परंतु वह सुंदरी कौन है, जो बड़ी शान के साथ क़दम उठाती हुई सामने के मैदान में अठखेलियाँ कर रही है?

उसके गालों पर गुलाबी छटा है, श्वासोच्छ्वास में प्रभात-काल की मधुरता है, सरलता और विनय से युक्त आह्लाद की उसकी आँखों में चमक है, और आनंद में मग्न होकर वह मीठी तान छेड़ रही है।

उसका नाम है आरोग्य-सुंदरी। वह उस व्यायाम की पुत्री है, जिसने उसे संयम-शक्ति के द्वारा जन्म दिया है। पौरुष और तेज उनके पुत्र हैं। वे खुली हवा में रहते हैं।

वे वीर, कर्त्तव्यवान् और प्रसन्न-चित्त हैं। उनकी बहन के समस्त सद्गुण और सौंदर्य उनमें वास करते हैं।

उत्साह उनकी नसों को संचालित करता है। बल उनकी हड्डियों में निवास करता है, और परिश्रम उनके लिये दिन-भर आनंद का साधन है।

उनके पिता की उद्योगशीलता से उनकी क्षुधा उद्दीप्त होती है, और उनकी माता का परोसा भोजन उनको तरोताज़ा बनाता है।

मनोविकारों के साथ युद्ध करने में उन्हें आनंद आता है, और बुरी आदतों को जीतने में गौरव प्राप्त होता है।

उनका सुख परिमित है। इसीलिये वह टिकाऊ है। उनकी विश्रांति थोड़ी, लेकिन गहरी और शांतियुक्त होती है।

उनका रक्त शुद्ध है, और चित्त शांत। वैद्य तो उनके घर का रास्ता जानते ही नहीं।

परंतु अफ़सोस! मनुष्य-संतान के यहाँ सुरक्षितता का पता तक नहीं और न निःशंकता उसके दरवाज़े पर देखी जाती है।

देख, बाहर से उसके लिये नित्य नए संकटों का रास्ता खुला हुआ है, और भीतर एक विश्वास-घातिनी उसको धोखा देने के लिये छिपी बैठी है।

वह अपने लता-कुंज में खड़ी होकर मोह-जाल फैलाती, और उसके मन को आकर्षित कर लेती है। वह कोमलांगी है, उसकी वेष-भूषा चटकीली और चित्ताकर्षक है। उसकी आँखों में कामुकता छाई है, और मोह तो उसके हृदय में बैठा ही रहता है। वह अपनी उँगली से संकेत करती है, और कटाक्ष-मात्र से वश कर लेती है। फिर मीठी-मीठी बातें करके ठगने का प्रयत्न करती है।

अरे, उसके मोह-पाश से दूर रह! उसके जादू-भरे शब्दों को न सुन, कान बंद कर ले! यदि उसकी अधमुँदी आँखों पर मुग्ध हो गया, उसके मृदुल शब्दों में मन लगाया, उसके बाहु-पाश में फँस गया, तो समझ ले कि वह तुझे सदा के लिये अपना ग़ुलाम बना लेगी।

लज्जा, रोग, अभाव, चिंता और पश्चात्ताप हमेशा उसके पीछे—उसके साथ-साथ—रहते हैं।

जहाँ उसके फंदे में पड़ा कि बस, काम-चेष्टाओं से निर्बल, भोग-विलास में लिप्त और आलस्य से शिथिल हुई शक्ति तेरे शरीर का साथ छोड़ देगी, और स्वास्थ्य तेरी प्रकृति को नमस्कार करेगा। आयु क्षीण होती जायगी, और तेरा अल्प-जीवन भी गौरव-हीन होगा। तेरा शोक असीम होगा। इतना होने पर भी तुझे किसी की दया के दर्शन न होंगे।

मनोधर्म

पहला अध्याय

आशा और भय

आशा के अभिवचन कमल की कलियों से भी अधिक मीठे, अधिक प्यारे. और बड़ी-बड़ी अपेक्षाएँ उत्पन्न करनेवाले होते हैं। परंतु भय की तो धमकियाँ-भर हृदय को कँपा देती हैं।

तथापि देखना. आशा तुझे मोहित न करे, और न भय सत्कार्यों से रोके। इससे तुझे समान चित्त से समस्त प्रसंगों का सामना करने की शक्ति प्राप्त होगी।

मृत्यु का डर भी नेक आदमी को भयभीत नहीं कर सकता। जो कभी बुरा काम करता ही नहीं, उसे डर किस बात का?

अपने समस्त अंगीकृत कार्यों के लिये युक्ति-संगत विश्वास के द्वारा अपने प्रयत्नों में प्राण की प्रेरणा कर। यदि तू सफलता से निराश हो गया है. तो तुझे वह कभी मिल नहीं सकती।

व्यर्थ के भयों से अपनी आत्मा को दहशत न खाने दे, और न अपने दिल को कल्पना के भूतों से टूटने ही दे।

भय विपत्ति का उत्पत्ति-स्थान है; परंतु जो मनुष्य आशा-वादी है, वह अपनी सहायता आप ही करता है।

जब कोई शुतुर्मुर्ग़ का पीछा करता है, तब वह अपने सिर को छिपा लेता है, और अपने तन की सारी सुध भूल जाता है। इसी प्रकार पुरुष का भय उसे संकट के सम्मुख ला देता है।

यदि तू किसी काम को असंभव समझता हो, तो तेरे मन की निराशा उसे सचमुच वैसा ही बना देगी। परंतु जो मनुष्य निश्चय-पूर्वक बराबर दीर्घ प्रयत्न करता रहता है, वह समस्त कठिनाइयों को पार कर जाता है।

व्यर्थ की आशा केवल मूर्ख हृदय ही को आश्वासन देती है। समझदार उसके पीछे नहीं पड़ते।

तर्क को अपनी समस्त इच्छाओं के आगे चला; पर संभवनीयता की सीमा से आगे न बढ़ने दे। इससे तुझे अपने स्वीकृत कार्य में सफलता मिलेगी, और तेरा हृदय कभी निराशा से खिन्न न होगा।

दूसरा अध्याय

हर्ष और विषाद

अपनी विनोद-वृत्ति को इतना न बढ़ा कि तेरा मन उन्मत्त हो जाय; न दुःख को इतना प्रबल होने दे कि हृदय ही दब जाय। इस संसार में न तो कोई अच्छी बात ही इतनी हर्ष-दायक है, और न कोई बुरी बात इतनी कष्टकारक, जिससे तू

समान-वृत्ति के तराज़ू पर या तो बहुत ही ऊँचा उठ जाय, या बिलकुल नीचे—रसातल को—चला जाय।

देख, सामने हर्ष का प्रासाद है। उसके बाहर की तरफ़ रंग-बिरंगी चित्रकारी की हुई है। इससे वह बड़ा प्रसन्न दिखाई देता है। उसमें से आनंद और हर्ष की जो ध्वनियाँ निरंतर आ रही हैं, उनसे तू इस बात को जान सकता है।

गृह-स्वामिनी गाती और हँसती हुई दरवाज़े पर खड़ी है। जो वहाँ से गुजरते हैं, उन्हें वह ज़ोर से आवाज़ लगाती है।

वह उन्हें बुलाती है—आओ, अंदर आओ, और जीवन के आनंद का आस्वादन करो; वह उनसे कहती है कि यह आनंद सिवा मेरे घर के और कहीं मिलने का नहीं।

परंतु तू उसके दरवाज़े पर पैर न रख, और न उन लोगों से, जो उसके घर में बराबर आते-जाते रहते हैं, कुछ संपर्क ही रख।

वे अपने को हर्ष के पुत्र अर्थात् 'आनंदी' कहते हैं। वे हँसते, खेलते और चैन करते हैं। परंतु उनके समस्त कार्यों में उन्मत्तता और मूर्खता भरी रहती है।

दुष्टता के साथ उनका घनिष्ठ संबंध है, और उनके कार्य उन्हें पाप की राह पर ले जाते हैं। तब संकट और भय उनको चारो ओर से घेर लेते हैं, और सर्वनाश की खाईं उनके पैरों-तले मुँह फैलाए रहती है।

अब उधर दूसरी दिशा की ओर आँख उठाकर उस

झोपड़ी को देख, जो पेड़ों से ढकी हुई है, और मनुष्य की दृष्टि के ओट है। वह दुःख का निवास-स्थान है।

उसकी मालकिन को देख। उसका हृदय निःश्वासों से धक्-धक् किया करता है, मुख शोक-संताप और हाहाकार से भरा रहता है। उसे मनुष्य की मुसीबतों की चर्चा में ही आनंद आता है।

वह जीवन के साधारण योगायोग को देखकर रोती है। मनुष्य की दुर्बलता और दुष्टता उसके होठों का विषय होती है।

उसकी दृष्टि में सारी प्रकृति बुराइयों से भरी हुई है। जिस वस्तु को वह देखती है, वही उसे अपने चित्त की उदासी में छाई हुई मालूम होती है। दुख-दर्द की पुकारों से उसका घर दिन-रात शोकाकुल रहता है।

उसके नज़दीक मत जा। उसकी साँस संक्रामक है। वह उन फलों को झुलसा देगी, उन फूलों को कुम्हला देगी, जो जीवन के उपवन को रमणीय बनाते और भूषित करते हैं। किंतु पूर्वोक्त आनंदाश्रम से बचते समय कहीं ऐसा न हो कि तेरे पैर तुझे विषाद के महल के आस-पास भटका ले जायँ। अतएव सावधानी के साथ मध्य-मार्ग में चलने का उद्योग कर। वह तुझे एक सुगम उतार से शांति-देवी के कुंज में पहुँचा देगा।

यहाँ शांति निवास करती है। सुरक्षितता और संतोष भी इसी के पास हैं। यह प्रसन्न तो है, पर विलासिनी नहीं, गंभीर

है, पर शोकाकुल नहीं। यह जीवन के हर्ष और विषाद को स्थिर और समान दृष्टि से देखती है।

इस शांति देवी के कुंज से. तू उन लोगों की मूर्खता और मुसीवत को देख पावेगा, जो या तो अपने हृदय की विलासिता के अनुगामी होकर मौजी और रँगीले-छबीले सहचरों के साथ रहा करते हैं, या खिन्नता और उदासी के शिकार होकर जीवन के कष्टों और आपत्तियों का ही रोना दिन-रात रोया करते हैं।

उनको देखकर तेरे हृदय में दया उत्पन्न होगी, और उनके मार्ग की भूलें तेरे पैरों को इधर-उधर भटकने से रोकेंगी।

तीसरा अध्याय

क्रोध

जिस प्रकार ववंडर अपने प्रकोप से पेड़ों को चीरता-फाड़ता हुआ प्रकृति की आकृति को विगाड़ देता है, या भूकंप अपने क्षोभ से वड़े-वड़े नगरों को उलट-पलट देता है, ठीक उसी तरह मनुष्य का क्रोधावेग अपने आस-पास अनेक उत्पात खड़े कर लेता है। संकट और विनाश तो उसके सिर पर ही मंडराया करते हैं।

परंतु तू अपनी दुर्बलताओं पर स्वयं ध्यान दे, और उन्हें भूल जा। इससे तू दूसरे को क्षमा कर सकेगा।

अपने को क्रोध के आवेग के वश न होने दे। ऐसा करना

मानो अपने ही हृदय को चोट पहुँचाना, या अपने मित्रों-स्वजनों का घात करने के लिये तलवार खींचना है।

यदि तू थोड़े-से भी क्रोधावेग को धीरज के साथ दबा देगा, तो तेरा यह कार्य बुद्धिमत्ता-पूर्ण समझा जायगा। यदि तू उसको अपने ध्यान से ही निकाल देगा, तो तेरा हृदय कभी तेरी भर्त्सना न करेगा।

क्या तू नहीं देखता कि क्रोधी मनुष्य विवेक-हीन हो जाता है? अतएव जब तक तेरा चित्त शांत और स्थिर है, दूसरे के क्रोध को देखकर उससे शिक्षा ग्रहण कर।

क्रोध-वश कोई काम न कर। समुद्र में तूफ़ान उठते हुए देखकर भी अपनी डोंगी क्यों छोड़ता है?

यदि क्रोध को वश में करना तेरे लिये असाध्य हो, तो कम-से-कम उसे रोक तो जरूर ले। यह समझदारी है। बेहतर तो यह है कि तू पहले से ही अपने को क्रोध के पंजे में फँसाने-वाले समस्त अवसरों से बचा ले। यदि ऐसे अवसर उपस्थित हो ही जायँ, तो उनसे अपनी रक्षा कर ले।

अपमान-कारक भाषणों से मूर्खों को क्रोध आ जाता है; परंतु बुद्धिमान् हँसकर उसकी उपेक्षा करते हैं।

प्रतिहिंसा को अपने हृदय में स्थान न दे। वह तेरे हृदय को विदीर्ण कर डालेगी, और उसकी सत्प्रवृत्तियों को कुरूप बना देगी।

अपनी हानि का बदला लेने की अपेक्षा, उसके लिये क्षमा

करने को सदा तैयार रह। जो बदला लेने का मौक़ा ताकता रहता है, वह अपने ही लिये कुआँ खोदने का इंतज़ाम करता है—अपने ही हाथों से अपने सिर आफ़त ढाता है।

क्रोधी मनुष्य को विनय-पूर्वक उत्तर देना आग पर पानी डालने की तरह है। इससे क्रोध की आँच कम होती है, और वह शत्रु से मित्र हो जाता है।

सोच तो सही कि क्रोध करने के योग्य कितनी चीज़ें हैं? तुझे यह जानकर आश्चर्य न होगा कि सिर्फ़ मूर्ख जन ही क्रोध करते हैं।

क्रोध का आरंभ या तो मूर्खता से होता है या दुर्बलता से; किंतु याद रख, और अच्छी तरह निश्चय रख कि पश्चात्ताप के सिवा दूसरी तरह इसका अंत बहुत कम होता है।

लज्जा मूर्खता के पीछे-पीछे चलती है, और क्रोध पश्चात्ताप के पीछे हाथ जोड़े खड़ा रहता है।

चौथा अध्याय

दया

जिस प्रकार वसंत अपने करों से पुष्प और पराग को पृथ्वी-पटल पर फैलाता है, जिस प्रकार मेघ जल-सिंचन करके शस्य के वैभव को पूर्णता पर पहुँचाता है; उसी प्रकार दया का मंद हास्य दुर्भाग्य के संतानों पर मंगल की वृष्टि करता है।

जो दूसरे पर दया दिखाता है, वह स्वयं अपने को दया का अधिकारी बनाता है। परंतु जिसका हृदय दया-शून्य है, वह स्वयं दया के योग्य नहीं।

मेमने के मिमियाने पर कसाई का हृदय जिस प्रकार द्रवित नहीं होता, उसी प्रकार निर्दय का हृदय दूसरों के कष्टों को देखकर नहीं पसीजता।

परंतु करुण-हृदय मनुष्य के अश्रु-कण, वसंत के हृत्पटल पर पाटल-पुष्प-से बरसनेवाले हिम-बिंदु की अपेक्षा भी, अधिक सुहावने होते हैं।

इसलिये ग़रीबों की पुकार सुनने से कान बंद न कर, और न निर्मल-हृदय मनुष्यों की मुसीबत को देखकर अपने हृदय को कठोर बना।

जब कोई अनाथ शरण आवे, जब कोई कातर-हृदया विधवा दुःखाश्रु गिराती हुई सहायता के लिये अनुरोध करे, तब उसके कष्टों पर दया दिखा; और जिनका कोई आश्रयदाता नहीं, उनकी सहायता के लिये अपना हाथ बढ़ा।

जब तुझे कोई ऐसा वस्त्र-हीन दीन भिखारी सड़कों पर भटकता हुआ मिले, जो जाड़े से ठिठुर रहा हो, और जिसके घरबार का ठिकाना न हो, तब तू उदारता-पूर्वक अपना हृदय उसके लिये खोल दे, और दान के हाथ फैलाकर मृत्यु से उसको बचा। इससे स्वयं तेरी आत्मा को शांति मिलेगी।

जब कोई ग़रीब बीमार होकर बिछौने पर कराह रहा हो,

जब एक अभागा पुरुष क़ैदख़ाने की यंत्रणाओं से त्रस्त हो रहा हो, या एक सफ़ेद बालोंवाला बूढ़ा अपनी कमज़ोर आँखों से दया की भिक्षा के लिये तेरी ओर देखता हो, तू किस प्रकार उनकी ज़रूरतों का ख़याल न करते हुए—उनके दुःखों का अनुभव न करते हुए—इस अतिशय सुखोपभोग में मग्न रह सकता है ?

पाँचवाँ अध्याय

वासना और प्रेम

सावधान रह ! ऐ युवक, विलासिता के जादू से सावधान रह !! कहीं कोई कुलटा तुझे, अपनी विषय-तृप्ति के लिये, मोह–जाल में न फँसा ले।

कामांध मनुष्य अपने साध्य से भी हाथ धो बैठता है। उसके क्षोभ से अंधा होकर वह विनाश-काल को अपने नज़दीक बुला लेता है।

इसलिये उसके मीठे प्रलोभनों पर अपने हृदय को हाथ से न जाने दे, और न अपनी आत्मा को उसके जादू–भरे मोह का ग़ुलाम होने दे।

इससे आरोग्य का निर्झर, जिससे सुख की सरिता को जीवन प्राप्त होता है, जल्द ही सूख जायगा—आनंद का प्रत्येक स्रोत बंद हो जायगा।

बुढ़ापा तेरे जीवन के आरंभ-काल में ही तुझ पर सवारी कर देगा; तेरा जीवन-सूर्य अपने उदय-काल में ही अस्तप्राय हो जायगा।

परंतु लज्जा और सद्गुण जब किसी सुंदरी की मोहकता को बढ़ाते हैं, तब उसकी आभा आकाशस्थ ज्योतिष्कों से भी अधिक देदीप्यमान होती है, और उसकी शक्ति के प्रभाव को रोकना निष्फल है।

उसके उरोज का विकास कुमुदिनी से भी बढ़ जाता है। उसकी मुस्किराहट कमलिनी से भी अधिक रमणीय होती है।

उसके नेत्रों का भोलापन हरिणी की आँखों की तरह है। उसका हृदय सादगी और सत्य का निवास-स्थान है।

उसके मुख का चुंबन मधु से भी अधिक मधुर होता है, और उसके मुँह से सुगंध का स्रोत निकलता है।

ऐसे मृदुल प्रेम के लिये अपने हृदय के द्वार को बंद न कर। उसकी पवित्र और उज्ज्वल ज्योति तेरे हृदय को उच्च बनावेगी, और ऐसा मुलायम कर देगी कि उस पर सच्चे और शुद्ध प्रेम के चिह्न अंकित हो जायँ।

रमणी

दूरदर्शिता के उपदेश को, ऐ प्रेम की सुंदर पुत्री ! सुन, और सत्य के अनुशासन को अपने हृत्पटल पर अंकित कर, जिससे तेरे अंतःकरण का सौंदर्य तेरे वदन की कांति को बढ़ा दे, और कमल के सदृश तेरी मनोमोहकता, प्रफुल्लता के मुरझा जाने पर भी, मधुरता को ज्यों-का-त्यों क़ायम रक्खे।

अपने यौवन के वसंत-काल में, वैभव के प्रभात में, जब कि पुरुषों की आँखें बड़े आह्लाद के साथ तुझे घूरती हैं, और प्रकृति उनकी चितवन का रहस्य तेरे कानों में कहती है, उनके फुसलानेवाले शब्दों को सावधानी के साथ सुन; अपने हृदय की रक्षा अच्छी तरह कर, और उनके मृदुल आग्रह पर ध्यान न दे।

याद रख, तू पुरुष की विवेकशील सहचरी बनाई गई है, उसके विकारों की गुलाम नहीं। तेरे अस्तित्व की इतिश्री केवल उसकी निस्सार वासनाओं की तृप्ति में नहीं। बल्कि उसके जीवन की कठिनाइयों में सहायता देने, अपनी कोमलता से उसे संतोष देने और मृदुल प्रेम-भाव से उसकी चिंताएँ मिटाने में है।

वह कौन देवी है, जो मनुष्य के हृदय पर विजय प्राप्त करती, उसे प्रेम के पथ में खींच लाती और उसके हृदय पर शासन करती है ?

देख. वह सामने चल रही है। उसकी चाल में कुमारा-वस्था का माधुर्य है। उसका अंतःकरण निर्दोष है, और नेत्रों में विनय-शीलता झलक रही है।

उसके हाथ काम करने के लिये उत्सुक हैं; पाँव दौड़ने में प्रसन्न नहीं हैं।

वह स्वच्छ वस्त्र पहने है। वह संयम से आहार करती है। नम्रता और सौम्यता उसके सिर पर वैभव के मुकुट की तरह शोभित हैं।

उसकी जिह्वा पर संगीत का वास है। उसके अधरों में मधु की मधुरता टपकती है।

उसके समस्त शब्दों में शिष्टता भरी रहती है, और उसके उत्तरों में नम्रता और सत्यता।

विनम्रता और आज्ञापालन उसके जीवन के पाठ हैं, और शांति और सुख उसके पुरस्कार।

दूर-दृष्टि उसकी अर्दली में चलती है, और सद्गुण दाहनी ओर।

उसकी आँखों से कोमलता और प्रेम बरसता है; परंतु विवेक अपने राजदंड-सहित उसकी भौंहों पर वास करता है।

उसके सामने विषयी मनुष्य की जिह्वा मूक हो जाती है—सद्गुण की धाक से उसका मुँह बंद हो जाता है।

जब कोई किसी की निंदा कर रहा हो, और उसकी सह-वासिनी के चाल-चलन की चर्चा हो रही हो, तो उस समय

उदारता और सौजन्य उसके मुँह को बंद कर रखते हैं, और स्तब्धता की उँगली उसके अधरों पर आ बैठती है।

उसका हृदय नेकी का घर है, इसलिये वह दूसरों से बदी की आशंका नहीं करती।

सुखी होगा वह पुरुष, जो उसे अर्धांगिनी बनावेगा; धन्य होगा वह बालक, जो उसे माता कहेगा।

उसके गृह-स्वामिनी होते ही शांति छा जाती है। वह विचार-पूर्वक आदेश करती है, और उसका पालन होने में देर नहीं लगती।

वह प्रातःकाल उठती, काम-काज का विचार करती, और प्रत्येक को उसके योग्य काम बताती है।

अपने परिवार की चिंता में उसे आनंद आता है। केवल उसी का वह चिंतन करती है, और उसके सदन में मितव्यय के साथ शोभा दिखाई पड़ती है।

उसकी व्यवस्था में दिखाई देनेवाली दूरदर्शिता उसके पति के समीप आदर की वस्तु है, और उसकी प्रशंसा सुनकर उसे मन-ही-मन आनंद होता है।

वह अपने बालकों के मन पर ज्ञान का संस्कार करती और अपने ही नेक उदाहरणों के द्वारा उनके आचार को अच्छे साँचे में ढालती है।

उसके मुँह से निकलनेवाले शब्द उनके यौवन-काल के

पथ-प्रदर्शक नियम हैं, उसकी आँखों के संकेत उन्हें आज्ञा-पालन के लिये आदेश करते हैं।

वह एक काम बताती है, और नौकर लोग उसके लिये झट दौड़ पड़ते हैं। वह संकेत-मात्र करती है, और काम बन जाता है; क्योंकि उसका प्रेम उनके हृदयों में प्रतिष्ठित है, उसकी कृपालुता उनके पाँवों में पंख लगा देती है।

उत्कर्ष-काल में वह घमंड से फूल नहीं जाती, और विपत्ति के समय अपने भाग्य के घावों को धैर्य के साथ अच्छा करती है।

उसके परामर्श से उसके पति के कष्ट हलके होते हैं, और प्रेम के कारण प्रिय हो जाते हैं। वह अपने हृदय को उसके हृदय में प्रेरित करता और सांत्वना पाता है।

वह मनुष्य सुखी है, जिसने ऐसी सती को अपनी सहचरी बनाया है। वह बालक धन्य है, जो उसे 'मा' कहकर पुकारता है।

कौटुंबिक संबंध

पहला अध्याय

पति

अपने लिये एक हृदयेश्वरी तजवीज कर, ईश्वर के आदेश का पालन कर, अपने लिये एक सहचरी की व्यवस्था कर, समाज का एक विश्वास-पात्र व्यक्ति बन।

परंतु सावधानी के साथ उसकी परख कर, एकदम निश्चय न कर; क्योंकि तेरे इस समय के चुनाव पर ही तेरा भावी सुख अवलंबित है।

यदि वह वस्त्राभूषणों की सजावट में—बनाव-सिंगार में—अपना अधिक समय नष्ट करती है, वह अपने ही रूप-लावण्य पर लट्टू हुई जाती है, और अपनी ही प्रशंसा से खुश होती है, वह बहुत हँसने और ज़ोर से बोलनेवाली है, उसके पाँव अपने पिता के घर नहीं टिकते, और उसकी आँखें निस्सकोच लोगों के चेहरों पर चक्कर लगाती हैं, तो, उसका सौंदर्य चाहे आकाश-मंडल के चंद्र के समान ही क्यों न हो, उसकी मोहिनी से अपना मुँह मोड़ ले—उसके रास्ते से अपने पाँव हटा ले, और काल्पनिक प्रलोभनों के मोह-जाल में अपनी आत्मा को न फँसने दे।

परंतु यदि उसमें उत्तम शिष्टाचार से युक्त सहृदयता दिखाई दे, तेरी रुचि के अनुरूप गुणों से युक्त उसका मन मिले, तो उसको अपने घर ले जा; वह तेरी सखी, जीवन की सहचरी, और हृदय की देवी होने योग्य है।

उसे तू ईश्वर-दत्त प्रसाद समझकर रख। अपने सदय व्यवहार के द्वारा उसके हृदय का प्रेम-पात्र बन।

वह तेरी गृह-स्वामिनी है। इसलिये उसके साथ आदर से पेश आ, जिससे तेरे नौकर-चाकर भी उसकी आज्ञा का पालन करें।

अकारण उसकी प्रवृत्तियों का विरोध न कर। वह तेरी चिंताओं की हिस्सेदार है. अपने सुख की भी उसे साथिनी बना।

उसके अपराध उसे सौम्यता से जतला दे। सखी—जबर-दस्ती से उसे अपनी आज्ञाकारिणी न बना।

अपने रहस्यों—गुप्त बातों—के विषय में उसके हृदय पर विश्वास रख। वह शुद्ध अंतःकरण से सलाह देती है। तुझे धोखा न होगा।

उसकी शय्या के प्रति प्रामाणिक रह—एकपत्नी-व्रत धारण कर; क्योंकि वह तेरे बालकों की माता है।

जब कष्टों और रोगों का आक्रमण उस पर हो, तब अपनी दया-मया से उसके दुःखों को हलका कर। दया और प्रेम का एक दृष्टिपात उसके दुःखों का शमन, और दर्द को हलका कर देगा, तथा दस वैद्यों की अपेक्षा अधिक कारगर होगा।

उसके स्त्रीत्व की कोमलता, और शरीर की सुकुमारता पर विचार कर; उसकी दुर्बलताओं के प्रति कठोरता का अवलंबन न कर, प्रत्युत स्वयं अपनी अपूर्णता का स्मरण कर।

दूसरा अध्याय

पिता

ऐ पिता, अपने को सौंपे गए कार्य के महत्त्व को सोच। जिन प्राणियों को तूने जन्म दिया है, उनका भरण-पोषण कर। यह तेरा कर्तव्य है।

तेरे इन प्राण-रूप बालकों का तेरे लिये आशीर्वाद या शाप-रूप होना, समाज के लिये उपयोगी या निरुपयोगी होना, तुझ पर ही अवलंबित है।

लड़कपन में ही उपदेशों द्वारा उनको सु-संस्कृत बना, और उनके मन को सत्य की शिक्षा से दीक्षित कर।

उनकी प्रवृत्ति की गति पर नज़र रख। कौमार्य में ही उन्हें सन्मार्ग दिखा। उम्र बढ़ने के साथ-साथ कहीं बुरी आदतें जड़ न जमाने पावें।

इससे वे पहाड़ों पर उगनेवाले देवदारु के वृक्षों की तरह उन्नति पावेंगे। वन के वृक्षों की अपेक्षा उनका मस्तक ऊँचा दिखाई देगा।

दुष्ट पुत्र पिता के लिये कलंक की बात है। परंतु सुपुत्र पिता के बुढ़ापे में उसकी प्रतिष्ठा को बढ़ाता है।

तेरा क्षेत्र तेरा ही है। ऐसा न हो कि उसकी जुताई की तरफ़ ध्यान न दे। जैसा बीज तू बोवेगा, वैसा ही फल तुझे मिलेगा। उन्हें आज्ञा-पालन करना सिखा। वे तेरा गुण-गान करेंगे। उन्हें विनय-शीलता सिखा; इससे उन्हें लज्जित होने का मौक़ा न आवेगा।

उन्हें कृतज्ञता की शिक्षा दे; वे लाभ प्राप्त करेंगे। दान का पाठ पढ़ा; वे प्रेम प्राप्त करेंगे।

उन्हें संयम-व्यसन-हीनता का मंत्र दे; वे आरोग्य प्राप्त करेंगे। दूरदर्शिता की शिक्षा दे; संपदा उनके पास आ जायगी।

न्याय का सबक़ सिखा; संसार उनका आदर करेगा। उन्हें सचाई सिखा; उनका हृदय कोसेगा नहीं।

उन्हें अध्यवसाय का पाठ पढ़ा; उनकी संपत्ति की वृद्धि होगी। उन्हें उपकारशीलता की शिक्षा दे; उनका अंतःकरण उच्च—उदात्त होगा।

उन्हें विज्ञान की शिक्षा दे; उनका जीवन उपयोगी होगा। उन्हें धर्म का ज्ञान दे; उनकी मृत्यु सुख-पूर्वक होगी।

तीसरा अध्याय

पुत्र

ऐ मनुष्य, ईश्वर के उत्पन्न किए प्राणियों से अक़्ल सीख, और उनकी शिक्षाओं को अपने आचरण में ला।

ऐ मेरे पुत्र, मरुस्थल में जा। सारस-युवक को देख।

उसे अपने हृदय से बातें करने दे। वह अपने वृद्ध पिता को अपने परों पर बिठाता है, उन्हें सुरक्षित स्थान पर उतारता और दाना-पानी पहुँचाता है।

बालक का भक्ति-भाव, सूर्य को दिखाई जानेवाली फ़ारिस की धूप से भी अधिक मधुर है—पश्चिमी हवा से उड़कर आनेवाली अरब के मसालों की खुशबू से भी ज्यादह भीनी है।

अपने पिता के प्रति कृतज्ञ रह; क्योंकि उसने तुझे जीवन दिया है—और अपनी माता के प्रति भी; क्योंकि गर्भावस्था में उसने तुझे आश्रय दिया है।

उसके वचन पर ध्यान दे; वे तेरे भले के लिये कहे जाते हैं। उनके उपदेशों को सुन; उनका उद्गम प्रेम से हुआ है।

वह तेरे हित पर ध्यान रखता रहा है। तेरे आराम के लिये उसने परिश्रम किया है। इसलिये उसकी अवस्था का ख़याल कर; उसका लिहाज़ कर; उसके सफ़ेद बालों का अपमान न होने दे।

अपनी असहाय बाल्यावस्था को मत भूल, और न अपनी जवानी की ढिठाई को। अपने वृद्ध माता-पिता की जीर्ण-शीर्णता पर दया-मया दिखला, और ढलती उम्र में उनकी सहायता तथा भरण-पोषण कर।

इससे उनके धवल केश-कलाप शांति के साथ मृत्यु का स्वागत करेंगे, और स्वयं तेरे बाल-बच्चे, तेरे नमूने को देखकर, तेरे पुत्र-धर्म का बदला अपने पितृ-प्रेम से देंगे।

चौथा अध्याय

बंधु-बांधव

तुम एक ही पिता की संतति हो, उसकी चितना ने तुम्हारा लालन-पालन किया है, और तुमने एक ही माता का दूध पिया है।

इसलिये अपने भाइयों के साथ प्यार के बंधन में बँधकर एक हो जाओ, जिससे तुम्हारे पिता के घर में शांति और सुख का निवास हो।

जब तुम इस दुनिया से अलग हो ओ, अपने उस बंधन को याद रक्खो, जो तुम्हें प्रेम और एकता के सूत्र में बाँधता है। अपने ही खून के मुक़ाबले में किसी बाहरी आदमी को तरजीह न दो।

यदि तुम्हारा भाई मुसीबत में फँसा हो, तो उसकी सहायता करो; तुम्हारी बहन संकट में हो, तो उसका साथ न छोड़ो।

इस प्रकार तुम्हारे पिता की संपद् उसके सारे वंशजों के भरण-पोषण में सहायक होगी, और उसकी यह चिंता-परंपरा तुम्हारे पारस्परिक प्रेम में दिखाई देगी।

ईश्वरीय तंत्र

या

मनुष्यों का आगंतुक अंतर

पहला अध्याय

समझदार और नादान

समझदारी का प्रसाद मानों ईश्वरीय देन है। वह प्रत्येक को, उचित मात्रा में. उसका अंश देता है।

क्या उसने तुझे ज्ञान-प्रदान किया है ? अंत:करण को सत्य के ज्ञान से प्रकाशित किया है ? यदि हाँ, तो अज्ञानियों को उसका उपदेश कर, और स्वयं अपनी उन्नति के लिये मूर्खों को वह ज्ञान सिखा।

सच्ची बुद्धिमत्ता मूर्खता से कम अभिमानिनी है। विचारवान् मनुष्य को बारबार संदेह हुआ करता है, और उसके अनुसार वह अपना विचार बदलता रहता है; परंतु मूर्ख मनुष्य दुराग्रही होता है। उसे किसी प्रकार का संशय होता ही नहीं। वह अपने अज्ञान को छोड़कर और सब बातें जानता है।

ज्ञान-शून्य मनुष्य का घमंड घृणा करने-योग्य वस्तु है। व्यर्थ की बक-बक करना अज्ञान-जात मूर्खता है। इतना होने पर भी बुद्धिमान् का यह काम है कि मूर्ख के औद्धत्य को

धैर्य के साथ सहन करे, और उसकी तर्क-विरुद्ध बातों के लिये उस पर दया करे।

तथापि तू अपने ही विचार के घमंड में फूल न जा, और न अपनी बुद्धि की श्रेष्ठता की डींग हाँक; क्योंकि स्पष्ट-से-स्पष्ट मानवीय ज्ञान भी निरी अंधता और मूर्खता है।

विचारवान् मनुष्य को अपनी अपूर्णता का—त्रुटियों का—ध्यान रहता है, इसलिये वह नम्रता से रहता है। वह स्वयं अपने अनुमोदन के लिये—इतमीनान के लिये—निष्फल परिश्रम करता है; परंतु मूर्ख अपने ही अंतःकरण के उथले झरने में झाँकता और उसकी तली के कंकड़-पत्थर को देख-देख खुश होता है। वह उन्हें ऊपर लाता, मोतियों की तरह दिखलाता फिरता और अपने जैसों से शाबाशी पाकर फूला नहीं समाता है।

वह तीन कौड़ी की वस्तुओं की प्राप्ति पर डींग हाँकता फिरता है; परंतु जिस बात में मूर्ख होना शर्म की बात है, वहाँ तक उसकी समझ और बुद्धि की पहुँच ही नहीं।

ज्ञान के मार्ग में होते हुए भी वह अज्ञान के पीछे दौड़-धूप करता है। उसके इस परिश्रम का पुरस्कार है निराशा और शर्मिंदगी।

परंतु विचारवान् मनुष्य अपने मन को ज्ञान के द्वारा संस्कृत करता है; कला-कौशल की उन्नति करने में उसका मन प्रसन्न रहता है, और उनकी सार्वजनिक उपयोगिता उसे सम्मानास्पद बनाती है।

फिर भी वह सद्गुणों की प्राप्ति को सबसे बड़ी विद्या मानता है, और सुख का विज्ञान ही उसके जीवन के लिये अध्ययन का विषय है।

दूसरा अध्याय

धनी और निर्धन

जिस मनुष्य को ईश्वर ने लक्ष्मी दी, और उसका सदुपयोग करने की बुद्धि भी प्रदान की है, समझना चाहिए कि उस पर ईश्वर की विशेष कृपा है, और उसकी दृष्टि में वह बहुत सम्मान्य है।

वह अपनी संपत्ति देखकर आनंदित होता है; क्योंकि वह उसे सत्कार्य करने के साधन देती है।

वह दीन-दुखियों की रक्षा—बलवानों के अत्याचार से निर्बलों की रक्षा करता है।

वह उन लोगों की खोज करता है, जो दया के पात्र हैं; वह उनके अभावों—आवश्यकताओं का पता लगाता है, उनकी छानबीन करता, और उन्हें दुखों से मुक्त करता है, वह भी बिना आडंबर के।

वह पात्रता को देख कर सहायता और पुरस्कार देता है; गुणी जनों को प्रोत्साहित करता और प्रत्येक उपयोगी कार्य की उन्नति में उदारता-पूर्वक सहायक होता है।

वह बड़े कार्यों को उठाता और उनका संचालन करता है; इससे उसका देश धन-संपन्न होता है। उसे नित्य-नया काम मिलता रहता है, वह नई-नई योजनाएँ तैयार करता है, जिससे कला-कौशल उन्नति पाते हैं।

वह उन खाद्य पदार्थों को, जो उसकी आवश्यकता से अधिक होते हैं, अपने निकटवर्ती ग़रीबों की चीज़ समझता है। वह उन्हें धोखा नहीं देता।

उसके हृदय की उपकार-शीलता को उसका ऐश्वर्य कम नहीं कर सकता। इसलिये वह लक्ष्मी को पाकर आनंदित होता है; और उसका यह आह्लाद बिल्कुल निर्दोष होता है।

परंतु लानत है उस शख़्श पर, जो अपरिमित धन को बटोरकर जमा करता और अपनी संपत्ति का उपभोग ख़ुद अकेले ही करता है।

वह ग़रीबों को कुचलता है, और उनके ललाट पर चमकने-वाले पसीने का ख़याल नहीं करता।

वह हृदय-हीन होकर दूसरों से बल-पूर्वक अपना उत्कर्ष कराता है। अपने बंधु-बांधवों का सर्वनाश देखकर भी उसका हृदय टस-से-मस नहीं होता।

वह अनाथों के आँसुओं को दूध की तरह पी जाता है; विधवाओं का विलाप उसके कानों को संगीत का स्वर मालूम होता है।

संपत्ति के प्रेम से उसका हृदय कठोर हो जाता है—न तो

किसी का विषाद और न किसी की विपत्ति उसे द्रवित कर सकती है।

परंतु इस पाप का शाप उसके पीछे हाथ धोकर पड़ा रहता है। इससे उसका हृदय निरंतर भयभीत बना रहता है। उसके चित्त की चिंताएँ और अंतःकरण की लोभमयी इच्छाएँ उससे उन मुसीबतों का काफ़ी बदला लेती हैं, जिन्हें उसने दूसरों के लिये पैदा किया है।

अरे, इस मनुष्य के हृदय की वेदनाओं के मुक़ाबले दरिद्रता का दुःख कौन चीज़ है?

ग़रीब मनुष्य को अपने तईं तसल्ली पाने दे—नहीं आह्लादित होने दे; क्योंकि उसके पास इसके बहुत-से कारण हैं।

वह शांति के साथ अपना रूखा-सूखा भोजन करता है; उसके भोजन के समय ख़ुशामदी और सर्वस्व डकार जानेवालों की भीड़ जमा नहीं होती।

आश्रित लोगों के ताँते से वह तंग नहीं होता, और न याचना के शंखनाद से त्रस्त।

लक्ष्मी के सुखास्वाद से वह वंचित रहता है। इसलिये वह उसके रोगों—दुष्परिणामों—से भी बचा रहता है।

वह जो रूखी-सूखी रोटी खाता है, वह क्या उसे मीठी नहीं लगती? जो पानी वह पीता है, वह क्या उसे रुचिकर नहीं होता? नहीं, वह तो उसके लिये विषय-विलासी जनों के बढ़िया-से-बढ़िया भोजन-पान से भी अधिक सुस्वादु है।

उसका परिश्रम उसके आरोग्य की रक्षा करता है और उसको ऐसी विश्रांति देता है. जो धनी-जन के मुलायम मख़-मली गद्दे से कोसों दूर है।

नम्रता के द्वारा वह अपनी इच्छाओं को मर्यादित करता है, और संपत्ति तथा वैभव-प्राप्ति की अपेक्षा उसे संतोष-जात शांति और स्वस्थता अधिक सुहाती है।

इसलिये धनवान् अपनी धनाढ्यता पर गर्व न करें; और न दरिद्र अपनी दरिद्रावस्था में विषाद के आगे सिर झुकावें। ईश्वरीय नियमों के अनुसार सुख तो दोनो को प्राप्त है।

तीसरा अध्याय

स्वामी और सेवक

ऐ मनुष्य, अपनी दासता की अवस्था पर अपने को न कोस! यह तो ईश्वरीय योजना है। इससे अनेक लाभ हैं। यह तुझे अपने जीवन की घोर चिंताओं से दूर रखती है। सचाई—ईमानदारी—ही सेवक की प्रतिष्ठा है; नम्रता और आज्ञा-पालन उसके सर्वोच्च गुण हैं।

इसलिये अपने स्वामी के वाक्प्रहार—झिड़कियां—को धीरज के साथ सह ले और जब वह तुझे डाँट-डपट करे, तब उसे उलटकर उत्तर न दे। तेरी इस त्याग-मूलक चुप्पी को वह भूल न सकेगा।

उसके हितों पर ध्यान रख। उसके काम-काज में मन लगा। उसकी चिंता रख। उसके विश्वास का पात्र बना रह।

तेरा परिश्रम और समय उसके अधीन है; उनसे उसे वंचित न रख; काम से जी न चुरा; क्योंकि उसी के लिये वह तुझे तनख़्वाह देता है।

और तू, ऐ स्वामी, यदि सेवकों से ईमानदारी की चाह रखता है, तो उनके साथ न्याय का बरताव कर। यदि तू अपनी आज्ञा का पालन तुरंत ही चाहता हो, तो आज्ञा देते समय औचित्य का ख़याल रख।

वे भी मनुष्य हैं। उनमें भी आत्म-तेज है। उग्रता और कठोरता से वे चाहे डर भले ही जायँ, किंतु उनके हृदय में स्वामी के प्रति प्रेम कभी नहीं उत्पन्न हो सकता।

तेरी झिड़कियों के साथ कृपालुता और मिठास मिली रहे, और अधिकार के साथ विवेक, जिससे तेरे उद्बोधन उसके हृदय पर अंकित हो जायँ, और अपना कर्तव्य-पालन करने में उसे सुख और आनंद मालूम हो।

इससे वह कृतज्ञ होकर प्रामाणिकता के साथ तेरी सेवा करेगा; प्रेम से ख़ुशी-ख़ुशी तेरी आज्ञा का पालन करेगा। इसके बदले में तू भी उसके परिश्रम और स्वामिभक्ति का उचित पारितोषक देने में मत चूक।

चौथा अध्याय

राजा और प्रजा

तुझे अपनी बराबरी के मनुष्यों ने साम्राज्य-सत्ता के ऊंचे पद पर प्रतिष्ठित करना स्वीकार किया है, अपना शासक बनाया है, इसलिये, हे परमात्मा के प्यारे, अपने पद की उच्चता तथा गौरव की अपेक्षा उनके विश्वास का महत्त्व और उद्देश अधिक समझ।

तू बढ़िया वस्त्र पहनकर सिंहासन पर विराजमान है, राज्य-वैभव से तेरा मंदिर परिवेष्टित है, सत्ता का राजदंड तेरे हाथों में सुशोभित है; परंतु ये राजचिह्न तुझे अपने लिये नहीं दिए गए हैं—तेरे निज के लिये ये चीजें नहीं हैं—बल्कि तेरे राज्य के हित के लिये हैं।

प्रजा का कल्याण ही राजा की कीर्ति है, प्रताप है; उसकी सत्ता और राज्य का अवलंबन प्रजा के अंतःकरण पर है।

महान् नृपति का मन अपनी महत्ता और ऐश्वर्य के साथ-ही-साथ उच्च होता जाता है। वह बड़ी-बड़ी बातों का विचार और अपने अधिकार योग्य कार्यों की खोज करता रहता है।

वह अपनी राजधानी के विचारशील पुरुषों को बुलाकर आज़ादी के साथ उनसे परामर्श कर, उन पर ध्यान देता है।

वह अपने प्रजाजनों को यथायोग्य दृष्टि से देखता है; वह

मनुष्यों की योग्यता को परखता और गुणों के अनुसार कार्यों पर नियुक्त करता है।

इससे उसके न्यायाधीश न्यायनिष्ठ होते हैं, उसके मंत्री विवेकशील होते हैं। उसके स्नेह-पात्र उसे धोखा नहीं देते।

कलाओं की तरफ़ वह केवल मुस्किरा देता है, और उनकी उन्नति हो जाती है। उसके हाथों की उदारता से शास्त्रों की उन्नति होती है।

वह विद्वानों और प्रतिभाशालियों—कल्पना-कुशल जनों—के सहवास में सुखी रहता है। उनके हृदय में प्रतिस्पर्द्धा की ज्योति जाग्रत् करता है, और उनके परिश्रम से उसका उत्कर्ष होता है।

व्यापार-वृद्धि करनेवाले व्यापारी का उत्साह, धरती को संपत्तिशाली, शस्य-संपन्न बनानेवाले कृषक की कुशलता, कला-निपुण की कल्पना और छात्रों की उन्नति का वह प्रेम-पूर्वक अभिनंदन करता तथा उदारता के साथ उनको पारितोषिक प्रदान करता है।

वह नए उपनिवेशों को बसाता है, सुदृढ़ जहाज़ों का निर्माण करता है, सुविधा के लिये नहरों की सृष्टि करता और सुरक्षा के लिये बंदर बनवाता है। इससे उसकी प्रजा की संपत्ति बढ़ती और राज्य का सामर्थ्य वृद्धि पाता है।

वह निष्पक्ष होकर विचार-पूर्वक क़ानून की रचना करता है। इससे उसके प्रजाजन अपने परिश्रम के फल का भोग

निश्शंक होकर करते हैं। राजनियम के अनुसार वर्ताव रखने में ही उन्हें सुख होता है।

वह दया की नींव पर अपने न्याय की इमारत खड़ी करता है, इसलिये अपराधियों को दंड देने में कठोर और निष्पक्ष होता है।

अपनी प्रजा की शिकायतें सुनने के लिये उसके कान सदा खुले रहते हैं। जो लोग उसकी प्रजा पर अत्याचार करते हैं, उनके हाथों को रोककर उन्हें मुक्त करने का सदा ध्यान रखता है।

इसलिये उसके प्रजाजन उसे पिता की तरह मानते तथा प्रेम और आदर की दृष्टि से उसे देखते हैं। वे उसे अपनी सुख-सामग्री का रक्षक—पालक समझते हैं।

प्रजा का यह प्रेम उसके हृदय में प्रजा-वात्सल्य की उत्पत्ति करता है। उनके सुख की रक्षा ही उसकी चिंता होती है।

प्रजा में उसके प्रति दुर्भाव नहीं उत्पन्न होता। इससे शत्रुओं का व्यूह-जाल उसके राज्य को हानि नहीं पहुँचा सकता।

उसके प्रजाजन स्वामिभक्त होते और दृढ़ता-पूर्वक उसका पक्ष ग्रहण करते हैं। वे फौलाद के किले की तरह उसके बचाव के लिये तैयार रहते हैं। इससे अत्याचारी की सेना उसके सामने हवा में भूसी की तरह उड़ जाती है।

निश्शंकता और शांति ऐसे राजा की प्रजा के निवास-स्थानों पर अनुग्रह रखती है; और बल तथा गौरव सदैव उसके सिंहासन के आस-पास घूमा करते हैं।

सामाजिक कर्तव्य

पहला अध्याय

उपकारशीलता

जब तुझे अपने अभावों का ध्यान हो, जब तू अपनी अपूर्णता को देखे, तब ऐ मनुष्य प्राणी, उस परमेश्वर के उपकार को मान, जिसने तुझे बुद्धि से सम्मानित किया है, वाक्-शक्ति प्रदान की है, और समाज में स्थान दिया है; जिससे तू परस्पर सहायता और उपकार का लेन-देन करता है।

तेरे लिये अन्न, वस्त्र, निवास की सुविधा, संकटों से तेरी रक्षा, जीवन के सुख-साधन, आदि सब चीजें तुझे दूसरों की सहायता से मिलती हैं। अपने समाज को छोड़कर तू इनका उपभोग नहीं कर सकता।

इसलिये तेरा यह कर्तव्य है कि तू मनुष्य-जाति का मित्र बन; क्योंकि तेरे साथ समाज का स्नेहभाव बना रहने में ही तेरा हित है।

कमल से जिस प्रकार स्वाभाविक रूप से सौरभ के निःश्वास छूटते हैं, उसी प्रकार उपकारशील मनुष्य के हृदय से सदैव सत्कर्मों के स्रोत फूटते हैं।

वह अपने चित्त की सुख-शांति का उपभोग करता और अपने सहवासी के सुख तथा उत्कर्ष से आनंदित होता है।

वह निंदा के लिये अपने कान खुले नहीं रखता। मनुष्य की ग़लतियों और त्रुटियों को देखकर उसका हृदय दुःखी होता है।

भला करना ही उसकी इच्छा होती है। वह भलाई के अवसर ढूँढ़ा करता है। दूसरों के कष्टों को दूर करते समय वह ऐसा मानता है, मानो वह स्वयं अपने ही को उन दुःखों से मुक्त कर रहा है।

अपने मन की महत्ता के कारण वह मनुष्य-मात्र के कल्याण का चिंतन करता और उदार-हृदय होकर उनकी उन्नति के लिये प्रयत्नशील होता है।

दूसरा अध्याय

न्याय

समाज की शांति न्याय पर अवलंबित है, और व्यक्तियों का सुख उनकी संपत्ति के सुरक्षित उपयोग पर।

इसलिये अपने हृदय की वासनाओं को परिमित बना। न्याय के हाथों को उन्हें ठीक-ठीक रास्ता बताने दे।

अपने सहवासी की—दूसरे की—वस्तु को बुरी दृष्टि से न देख; उसकी संपत्ति का स्पर्श तक न कर—उसे पवित्र रख।

मोह उस पर हाथ उठाने के लिये तुझे मोहित और उत्तेजना उत्तेजित न करे, जिससे उसका जीवन संकटमय हो जाय।

उसके शील की कीर्ति को न बिगाड़; उसके ख़िलाफ़ भूठी शहादत न दे।

उसके नौकरों को कर्त्तव्य-भ्रष्ट न कर कि वे उसे धोखा दें, और संकट के समय उसका साथ छोड़ दें। उसकी हृदयेश्वरी को पाप-कार्य के लिये न फुसला।

इससे उसके हृदय को ऐसा दुःख होगा, जिसे तू दूर न कर सकेगा; और उसके जीवन को ऐसा आघात पहुँचेगा, जिसका फिर कोई इलाज न हो सकेगा।

मनुष्यों के साथ व्यवहार करने में निष्पक्ष और न्यायी बन; जैसा व्यवहार उनसे चाहता है, वैसा ही उनके साथ कर।

अपनी ज़िम्मेदारी को ईमानदारी के साथ निबाह; जो लोग तुझ पर भरोसा करते हैं, उन्हें धोखा न दे। यक़ीन रख कि ईश्वर की दृष्टि में चोरी करने की अपेक्षा धोखा देना अधिक पाप है।

ग़रीब को दुःख न दे; और न मज़दूरों को उनकी मज़दूरी से वंचित कर।

जब तू लाभ के लिये बिक्री करने लगे, तो अंतरात्मा की पुकार पर ध्यान दे; परिमित प्राप्ति पर संतोष रख; ख़रीदार के अज्ञान से अनुचित लाभ न उठा।

अपना ऋण चुका दे; क्योंकि तेरी साख पर विश्वास रखकर ही साहूकार ने तुझे ऋण दिया है। उसका प्राप्तव्य उसे न देना नीचता और अन्याय है।

अंत में, ऐ समाजशील मनुष्य, तू अपने हृदय का संशोधन कर; स्मृति को अपनी सहायता के लिये बुला। यदि तूने इनमें से किसी भी बात का उल्लंघन किया हो, तो दुखी और लज्जित हो, तथा भरसक उसका सुधार शीघ्र कर।

तीसरा अध्याय

दया-दाक्षिण्य

सुखी है वह मनुष्य, जिसने अपने हृदय में उपकारशीलता के बीज बोए हैं; क्योंकि उसके फल होंगे—दया और प्रेम।

उसके हृदय-स्रोत से नेकी की नदियाँ प्रवाहित होंगी, और उनकी धारा मनुष्य-जाति के कल्याण के लिये बहती रहेगी।

वह दीन-हीन को उसकी मुसीबत में सहायता पहुँचाता और मनुष्य-मात्र की उत्कर्ष-वृद्धि करने में हर्ष पाता है।

वह अपने सहवासी की निंदा नहीं करता, द्वेष और मत्सर की बातों पर विश्वास नहीं रखता, और न वह उनकी चुगलियाँ करता फिरता है।

वह दूसरों के अपराधों को क्षमा कर देता है—उन्हें अपनी स्मृति से बाहर निकाल फेकता है। प्रतिहिंसा और मत्सर उसके हृदय में स्थान नहीं पाते।

वह बुराई के बदले बुराई नहीं करता। वह अपने शत्रुओं से भी घृणा नहीं करता, वरन् मित्र-भाव से उद्बोधन के रूप में उनके अन्यायों का बदला देता है।

दुःखियों की चिंताओं और दुःखों को देखकर उसकी दयालुता जाग्रत् होती है। वह उनके दुःख के भार को हलका करने का प्रयत्न करता है। इस तरह जो सफलता-जनित सुख उसे मिलता है, उसे वह अपने परिश्रम का पारितोषिक समझता है।

वह क्रोधी मनुष्य के आवेग को शांत कर उनके कलह को मिटाता और वैमनस्य तथा लड़ाई-झगड़ों को रोकता है।

वह अपने आस-पास शांति और स्नेह-भाव की वृद्धि करता है। इससे लोग उसका कीर्ति-गान करते हुए उसे आशीर्वाद देते हैं।

चौथा अध्याय

कृतज्ञता

जिस प्रकार पेड़ों की शाखाएँ अपना रस उन जड़ों को पहुँचाती हैं, जहाँ से उन्होंने जन्म पाया है; जिस प्रकार नदी अपनी धारा उसी समुद्र में छोड़ती है, जहाँ से उसे जल प्राप्त हुआ है; इसी प्रकार कृतज्ञ मनुष्य का हृदय अपने उपकारकर्ता की ओर खिंचता है, और वह उस प्राप्त लाभ का बदला देने में प्रफुल्लित होता है।

वह उस उपकार को प्रसन्नता-पूर्वक सिर चढ़ाता और अपने उपकारकर्ता को श्रद्धा और प्रेम की दृष्टि से देखता है।

यदि बदला चुकाना उसके वश की बात न हो, तो वह उसके उपकार की स्मृति का लालन-पालन स्नेह-पूर्वक करता है वह जीवन-पर्यंत उसे नहीं भूलता।

उदार पुरुष के कर उस आकाशस्थ जलद-पटल की तरह हैं, जो जगतीतल पर फूल, फल और दल की वृष्टि करते हैं परंतु कृतघ्न मनुष्य का हृदय मरु-स्थल की तरह है। वह किसी लोभी की तरह वर्षा की बूँदों को पीकर उन्हें अपने हृदय में संचित तो कर रखता है, पर उससे कुछ उपजाता नहीं।

अपने हितकर्ता की ईर्ष्या न कर, और न उसकी की हुई भलाई को छिपाने का प्रयत्न कर; यद्यपि एहसानमंद होने की अपेक्षा एहसान करना अच्छा है, और उदारता से स्तुति-कीर्ति प्राप्त होती है, तथापि कृतज्ञता-जात नम्रता हृदय को वशीभूत कर लेती है—कृतज्ञ मनुष्य को नर और नारायण, दोनो की दृष्टि में प्रिय बनाती है।

परंतु घमंडी मनुष्य की दी हुई किसी भी वस्तु को स्वीकार न कर, और न स्वार्थी और लोभी मनुष्य पर कभी एहसान कर। अभिमानी का घमंड तुझे लज्जित करेगा, और लोभी की लालसा कभी तृप्त नहीं होती।

पाँचवाँ अध्याय

निष्कपटता

यदि तू सत्य के सौंदर्य में निमग्न है, यदि उसके गुणों की पवित्रता पर तेरा हृदय मुग्ध है, तो उसके प्रति अपनी भक्ति दृढ़ रख; उसका त्याग न कर। इस व्रत पर यदि तू सदैव क़ायम रहा, तो तेरी प्रतिष्ठा बिना बढ़े न रहेगी।

निष्कपट मनुष्य की जिह्वा का मूल हृदय में होता है। धूर्तता और कपट उसके शब्दों में स्थान नहीं पाते।

वह असत्य से लज्जित होकर नीचे देखने लगता है, परंतु सत्य बोलने में उसकी आँखें एक-सी स्थिर रहती हैं।

वह सच्चे मनुष्य की तरह अपने शील के गौरव की रक्षा करता और कपट-विद्या को दूर से घृणा करता है।

उसका व्यवहार सदा एक-सा होता है। इससे वह कभी उलझन में नहीं फँसता। सत्याचरण के लिये उसके पास काफ़ी साहस होता है, परंतु असत्य बोलने से वह भय करता है। कपट-व्यवहार की नीचता की अपेक्षा वह बहुत उच्च स्थान पर रहता है। उसके मुख के शब्द उसके हृदय के विचारों के प्रतिबिंब होते हैं।

फिर भी वह दूरदर्शिता और सावधानी के साथ हरएक बात कहता है। वह सत्य मनन करता रहता और विचार कर बोलता है।

वह मित्र-भाव से नसीहत देता है, और दिल खोलकर

उलहना भी। वह जिस बात की प्रतिज्ञा करता है, उसका पालन निश्चय-पूर्वक करता है।

परंतु कपटी मनुष्य के विचार उसके हृदय की तह में छिपे रहते हैं। उसके शब्दों में सत्य का आभास-मात्र होता है, पर वास्तव में दूसरों को ठगना ही उसके जीवन का व्यवसाय है।

वह दुःख में हँसता, और हर्ष में रोता है। उसके मुख के शब्दों में और उसकी कृति में मेल नहीं होता।

वह छछूँदर की तरह अँधेरे में छिपकर कार्य करता है, और समझता है, मुझे कोई देखता नहीं। परंतु जब उसकी भूलें प्रकाश में आती हैं, तब उसकी झुठाई उसके सिर लदती, और उसके कपाल पर कलंक का टीका लग जाता है।

वह सदा निग्रह में अपना जीवन व्यतीत करता है; उसके हृदय और जिह्वा में सदा वैमनस्य बना रहता है।

कपटी मनुष्य इस बात के लिये बहुत परिश्रम करता है कि लोगों की नजरों में मैं सज्जन दिखाई दूँ; पर वह आश्रय लेता है कपट-कृत्यों का ही।

पर ऐ मूर्ख ! ऐ नादान !! अपने असली स्वरूप को छिपाने में तुझे जो कष्ट होता है, वह उन कष्टों से अधिक है, जो अपना सच्चा स्वरूप प्रकट करने में होते हैं। और, जब सुरक्षितता के होते हुए भी तेरा छद्मवेष खुलेगा, तब क्या ज्ञानवान् लोग तेरे कपट पर तेरा तिरस्कार और उपहास न करेंगे ?

धर्म

ईश्वर केवल एक है। वह इस संसार का कर्ता, धर्ता, हर्ता, सर्वशक्तिमान्, अनादि, अनंत और अचिंत्य है।

सूर्य ईश्वर नहीं है; हाँ, वह उसका दिव्य से दिव्य प्रतिबिंब अवश्य है। वह अपने तेज से जगत् को प्रकाशित करता है; उसकी उष्णता से पृथ्वी के पदार्थों को जीवन मिलता है। अतः उसे ईश्वर की सृष्टि और इसका कार्य-साधक समझकर उसकी नित्य स्तुति कर।

वही एकमात्र परमेश्वर, जो सर्वोपरि है, मेधावी है—और कल्याण-मूर्ति है। बस, एकमात्र वही उपासना, आराधना, स्तुति और कृतज्ञता का अधिकारी है।

उसने अपने हाथों के बल पर आकाश को फैला रक्खा है, और अपनी उँगलियों के द्वारा तारकाओं का भ्रमण-मार्ग अंकित कर दिया है।

उसने समुद्र की सीमा बाँध दी है, जिसे वह उल्लंघन नहीं कर सकता। उसने पंच-महाभूतों को अपने अधीन रक्खा है।

वह जब पृथिवी-मंडल को हिलाता है, समस्त राष्ट्र काँप उठते हैं। वह अपने बिजली-रूपी भाले जब फेंकता है, दुष्टात्माओं के दिल दहल उठते हैं।

वह केवल अपने शब्दों या आज्ञा के द्वारा अनंत कोटि

ब्रह्मांडों का निर्माण करता है। वह उनको अपने हाथों से स्पर्श-मात्र करता है, और वे शून्य में विलीन हो जाते हैं।

उस सर्वशक्तिमान् की विभूतिमत्ता के सामने नम्र हो। उसके क्रोध को उद्दीप्त न कर, अन्यथा अनर्थ हो जायगा।

ईश्वर के समस्त कार्यों में उसकी ईश्वरता दिखाई देती है, और वह अनंत चातुर्य के द्वारा अपने शासन और अधिकार का संचालन करता है।

संसार के शासन के लिये उसने नियमों की रचना की है। वे भिन्न-भिन्न प्राणियों के लिये भिन्न-भिन्न हैं। प्रत्येक प्राणी उसकी इच्छा के अनुसार स्वाभाविक रीति से उनका व्यवहार करता है।

उसके मस्तिष्क में—मन में—समस्त ज्ञान परिभ्रमण करता रहता है; भविष्य-काल का रहस्य उसके आगे खुला रहता है।

तेरे हृदय के विचार उससे छिपे नहीं रहते। वह तेरे विचारों को—निश्चयों को—उनके जन्म से पहले ही जान लेता है।

उसके भविष्य-ज्ञान के लिये कोई बात संदिग्ध नहीं; उसके पूर्व-ज्ञान के नजदीक कोई बात आकस्मिक नहीं।

उसकी प्रत्येक लीला अद्भुत है। उसके अनुशासन अचिंत्य हैं; उसका ज्ञान कल्पनातीत है।

इसलिये उसके ज्ञान पर श्रद्धा रख, उसका आदर कर, और उसके महान् आदेशों के आगे अत्यंत नम्रता-पूर्वक सिर झुका।

परमात्मा दयालु और उपकारकर्ता है। दया और प्रेम के वशीभूत होकर ही उसने इस सृष्टि को उत्पन्न किया है।

उसके प्रत्येक कार्य में उसका सौजन्य स्पष्ट रूप से प्रकट होता है। वह संपदा का स्रोत और पूर्णता का केंद्र है।

उसकी यह सृष्टि ही उसके सौजन्य को व्यक्त करती है। समस्त सुख-साधन उसका स्तुति-गान करते हैं। वह उसे सौंदर्य से सुसज्जित करता है, भोजन देकर पोषण करता और आनंद के साथ उसकी परंपरा क़ायम रखता है।

आकाश की ओर आँख उठाकर देख; वहाँ उसकी कांति देदीप्यमान दिखाई देती है। नीचे भूमंडल की ओर दृष्टि कर; वह उसके सौजन्य से परिपूर्ण नज़र आता है। पर्वत और गुफाएँ आनंद-मग्न होकर उसके स्तुति-गीत गाती हैं; खेत, नदियाँ और वन उस स्तुति-गीत की प्रतिध्वनि करते हैं।

परंतु, ऐ मनुष्य, उसने तुझे अपने विशेष कृपा-प्रसाद का भाजन बनाकर औरों से श्रेष्ठ बनाया और अन्य प्राणियों से तुझे ऊँचा पद प्रदान किया है। क्यों?

उसने तुझे तेरे पद की रक्षा के लिये बुद्धि दी है; समाज की उन्नति करने के लिये वाणी से विभूषित किया और विचार-शक्ति प्रदान कर तेरे मन को उच्च बना दिया है, जिससे तू उसकी अनुपम संपूर्णता का ध्यान और मनन कर सके।

प्रकृति के धर्म में हो उसने तेरे जीवन के नियम की रचना कर दी है। तेरे कर्तव्य को उसने इतनी अच्छी तरह तेरी प्रकृति

के अनुकूल बनाया है कि उसके अनुशासनों का पालन करने में ही तुझे सुख और आनंद हो।

इसलिये भक्ति-पूर्वक उसके सौजन्य का गुण-गान कर, और एकचित्त होकर उसके प्रेम के चमत्कारों का सेवन कर। अपने हृदय को कृतज्ञता और मान्यता से परिसावित होने दे। तेरी वाणी उसकी स्तुति और आराधना करे; तेरे जीवन के कार्य उसके नियम—क़ानून—के प्रति प्रेम प्रदर्शित करें।

परमेश्वर न्याय-परायण और सात्त्विक है, इसलिये वह सत्यता के साथ निष्पक्ष होकर मर्त्य लोगों का न्याय करता है।

जब उसने अपने नियम सौजन्य और दया के साथ बनाए हैं, तो क्या वह उनके उल्लंघन करनेवालों को दंड नहीं देगा?

यदि तुझे दंड मिलने में देर हो गई हो, तो यह समझने का दुःसाहस न कर कि परमात्मा के हाथ कमज़ोर हो गए हैं; और न इस बात की व्यर्थ आशा ही रख कि तेरे कार्यों की ओर उसने अपनी आँखें बंद कर रक्खी हैं।

उसकी आँखें प्रत्येक मनुष्य के हृदय के रहस्य को देख लेती हैं, और वह उन्हें सदा याद रखता है। वह न तो व्यक्तियों की और न उनके पदों की ही मुरौवत करता है।

जब आत्मा इस मर्त्य-जीवन की भारभूत जंजीर को तोड़ डालती है, तब उच्च और नीच, सधन और निर्धन, विज्ञ और अज्ञ, सबको अपने-अपने कर्मों के अनुसार परमेश्वर की ओर से यथोचित फल मिलता है।

उस समय, जो दुष्टात्मा हैं, वे भय से थर-थर काँपेंगे; परंतु जो पुण्यवान् हैं, उनके हृदय को उसके न्याय से हर्ष होगा।

इसलिये सदा परमात्मा से डर, और उसी रास्ते से चल, जिसे उसने तुझे बताया है। दूरदर्शिता के उपदेश को सुन। संयम तुझे इंद्रिय-जप सिखावेगा, न्याय तेरा पथ-दर्शक होगा, परोपकार तेरे हृदय को उत्साहित करेगा, और ईश्वर के प्रति कृतज्ञता तुझे भक्ति की स्फूर्ति देगी। इनसे तुझे इस लोक में सुख मिलेगा, और अंत को परलोक में शाश्वत आनंद के सदन स्वर्ग-धाम में विश्राम।

यही मनुष्य-जीवन का

सच्चा सद्व्यय है।

जीवन का सद्व्यय

उत्तरार्द्ध

मनुष्य—प्राणी

पहला अध्याय

मनुष्य-शरीर और उसकी रचना

ऐ मनुष्य, तू अज्ञानी और अशक्त है। अतएव, ऐ मिट्टी के पुतले, तुझे विनम्र रहना चाहिए। क्या तू उस अनंत और सत्य-ज्ञान का चिंतन करना चाहता है? उस सर्व-शक्तिमान् के चमत्कार को देखना चाहता है, जो तेरे चारों ओर छाया हुआ है? यदि हाँ, तो तू अपने शरीर पर विचार कर।

तेरी उत्पत्ति अद्भुत और भय-जनक है, इसलिये अपने स्रष्टा से डर, और उसकी स्तुति कर, तथा उस पर दृढ़ विश्वास रखकर आनंदित रह।

सोच, प्राणियों में अकेला तू ही उन्नत और श्रेष्ठ क्यों बनाया गया है?—इसलिये कि तू उसके कार्यों को देख सके। तुझे उनको देखने की आवश्यकता क्यों है? इसलिये कि तू उनका यशोगान करे—उनसे शिक्षा ग्रहण करे। स्तुति क्यों? इसलिये कि तू उनके और अपने स्रष्टा की पूजा-आराधना भली भाँति कर सके।

चैतन्य—आंतरिक सावधानता—अकेले तुझको ही क्यों प्राप्त है? तुझे कहाँ से मिला है?

मांस में विचार करने की शक्ति नहीं, विवेचना करना हड्डियों का काम नहीं। सिंह नहीं जानता कि कीड़े मुझे खा जायँगे; बकरा नहीं जानता कि मैं 'वध' किए जाने के लिये पोसा जा रहा हूँ।

पर अन्य प्राणियों की अपेक्षा तुझमें कुछ विशेषता है, और वह तुझे इंद्रिय-गोचर ज्ञान की अपेक्षा किसी उच्च बात की प्रेरणा करती है। देख तो, वह है क्या?

उसके चले जाने पर भी तेरा शरीर ज्यों-का-त्यों बना रहता है। इससे जाना जाता है कि वह उसका अंग नहीं। अतएव वह जड़ नहीं, शाश्वत और स्वतंत्र है—अपने कर्मों की उत्तरदात्री है।

गधा अपने दाँतों से तृण को खा लेता है। इसलिये क्या अन्न का स्वाद उसे मालूम हो जाता है? मगर की रीढ़ तेरी ही तरह सीधी है; पर क्या वह तेरी तरह सीधा खड़ा हो सकता है?

ईश्वर ने जैसे इनकी रचना की है, उसी तरह तुझे भी बनाया है; इन सब के पीछे तुझे उत्पन्न किया है। तू इन सब से श्रेष्ठ है। तुझे इन सब पर हुकूमत करने का उसने अधिकार दिया है, और स्वयं अपने श्वासोच्छ्वास के द्वारा उसने तुझे वेद के तत्त्व का ज्ञान कराया है।

अतएव तू उसकी सृष्टि का एक अभिमान करने योग्य पदार्थ है। पुरुष और प्रकृति का संधि-साधन अपने को

समझ; अंतःकरण में परमात्मा के अंश का अनुभव कर; आत्मगौरव को याद कर, और बुरे अथवा निंद्य कर्म करने की नीचता न कर।

साँप के मुँह में ज़हर और भय को किसने स्थान दिया ? घोड़े को बादल की तरह हिनहिनाने की ताक़त किसने दी है ? उसी परमात्मा ने, उसने ही तुझे अपने काम के लिये साँप को मार डालने और घोड़े को पालने की इच्छा भी दी है।

दूसरा अध्याय

इंद्रियों का उपयोग

इसलिये कि तेरे शरीर की महिमा अधिक है, तू शेखी न वघार. और न अपने मस्तिष्क पर ही फूल। तू अन्य प्राणियों की अपेक्षा श्रेष्ठ वनाया गया है। क्या घर के मालिक की महिमा उसकी दीवारों की अपेक्षा अधिक नहीं है ?

नाज बोने के पहले ज़मीन तैयार करनी चाहिए; घड़ा वनाने के पहले ही कुम्हार को मट्टी वना लेनी चाहिए।

जिस प्रकार आकाश की श्वास—ईश्वर का आदेश—गहरे समुद्र से कहती है—इसी रास्ते से तेरी तरंगें वहें. दूसरे से नहीं; इतनी ऊँची उठें, इससे अधिक नहीं; इसी प्रकार ऐ मनुष्य, तेरी आत्मा तेरे शरीर को आदेश देकर कार्य में प्रवृत्त करे. और उसके आवेग को दवावे।

तेरी आत्मा तेरे शरीर का राजा है। इसलिये उसकी प्रजा को—इंद्रियों को—उसके विरुद्ध विप्लव न करने दे।

तेरा शरीर भूगोल की तरह है। तेरी हड्डियाँ उसके स्तंभ हैं, जो उसे धारण किए हुए हैं।

जिस प्रकार समुद्र से जल-स्रोत उत्पन्न होने पर उनका पानी नदियों में जाता, और वहाँ से बहता हुआ फिर समुद्र-गर्भ में आ जा जाता है, उसी प्रकार तेरा चैतन्य तेरे हृदय से गति पाकर बाहरी अवयवों तक जाता और फिर लौटकर अपने स्थान को आ जाता है।

क्या इन दोनो का क्रम सदा एक-सा नहीं चला करता? देख, एक ही ईश्वर दोनो का प्रेरक है।

क्या तेरी नाक सुगंधों की सड़क नहीं है? तेरा मुख मिष्ठान्नों का मार्ग नहीं है? तो भी यह जान रख कि अधिक काल तक सुगंध का उपभोग जी को उबा देता है, और मिष्ठ भोजन के अतिरेक से भूख उत्तेजित होने के बजाय मर जाती है।

क्या तेरे नेत्र पहरेदार नहीं हैं? तो भी वे तेरी देख-भाल करनेवाले सत्य और असत्य का निर्णय करने में कितने असमर्थ होते हैं!

अपनी आत्मा को सब तरह सौम्य बना, मन को उसके लाभ पर ध्यान रखने की सीख दे, जिससे उसके ये मंत्री सदा तुझे सत्य तक पहुँचाया करें।

क्या तेरे हाथ में ये चमत्कार नहीं हैं ? क्या सृष्टि में ऐसी दूसरी कोई वस्तु है ? ये तुझे किसलिये दिए गए हैं ? केवल इसीलिये कि तू उन्हें अपने भाइयों की सहायता के लिये आगे बढ़ावे ।

समस्त जीवधारियों में एक तू ही क्यों लज्जात्तम बनाया गया है ? इसलिये की संसार को तेरे चेहरे से तेरी शर्मिंदगी दिखाई दे । अतएव कोई लज्जा-जनक कार्य न कर ।

भय और उद्वेग तेरे चेहरे के तेज को क्यों हरण कर लेते हैं ? बुरे कामों से दूर रह; तू देखेगा कि भय तुझसे नीचे है, और उद्वेग निर्बल ।

तुझ अकेले ही को स्वप्न में अनेक आभास क्यों दिखाई देते हैं ? उनकी अवहेलना न कर; समझ रख, स्वप्न ईश्वर-प्रेरित हैं ।

एक तू ही बोल सकता है ! अपने इस दिव्य विशेषाधिकार पर कौतुक कर, और जिसने तुझे यह प्रदान किया है. उसकी स्तुति अंतःकरण और भक्ति-भाव से कर; अपने बालकों को धर्माचरण के द्वारा शिक्षा, और नन्हें बच्चों को उपदेश देकर उन्हें ईश्वर-परायण बना ।

तीसरा अध्याय

मानवीय आत्मा—उसकी उत्पत्ति और धर्म

ऐ मनुष्य, स्वास्थ्य, शौर्य और सुडौलपन तेरे बाह्य शरीर के लिये प्रसाद-रूप हैं। इन सबमें श्रेष्ठ है स्वास्थ्य। शरीर के साथ जो संबंध स्वास्थ्य का है, वही आत्मा के साथ सत्य का है।

तुझमें आत्मा है—यह बात तेरे समस्त प्रकार के ज्ञान में सबसे अधिक निश्चित और समस्त सत्य बातों में सबसे अधिक स्पष्ट है। इसलिये नम्रता-पूर्वक ईश्वर का कृतज्ञ हो; परंतु उसे पूरी तरह जानने के झगड़े में न पड़। वह अतर्क्य है।

विचार-शक्ति, ग्रहण-शक्ति, विवेचन-शक्ति तथा इच्छा-शक्ति को आत्मा न कह। ये तो उसके कार्य हैं, मूलतत्त्व नहीं।

अपनी अवज्ञा न हो—इस ख़याल से उसे स्वर्ग में खींच ले जाने का प्रयत्न न कर; उन आदमियों की तरह न कर, जो ऊपर चढ़कर फिर गिरते हैं; और न बुद्धि-हीन पशुओं की श्रेणी तक नीचे घसीट कर ले जा।

उसकी स्वाभाविक शक्तियों से उसे खोज, उसके गुणों के द्वारा उसे पहचान; तेरे सिर के बालों से भी उनकी संख्या अधिक है—आकाशस्थ तारकाओं से भी ज़्यादा है।

अरबिस्तान की तरह यह न मान कि आत्मा सब लोगों में बँटी हुई है; और न मिसर के लोगों की तरह यह विश्वास रख

कि प्रत्येक मनुष्य की अनेक आत्माएँ होती हैं, बल्कि यह जान कि तेरे एक हृदय की तरह तेरी एक ही आत्मा है।

क्या सूर्य कीचड़ को सुखाकर कड़ा नहीं कर देता? क्या वह मोम को मुलायम नहीं करता? जिस प्रकार एक ही सूर्य दो काम करता है, उसी तरह एक आत्मा भी परस्पर-विरुद्ध दो बातों की इच्छा करती है।

अभ्र-पटल चंद्रमा के मुख-मंडल के सामने परदे की तरह फैल जाता है, तो भी वह अपने धर्म को नहीं छोड़ता। उसी प्रकार आत्मा मूर्ख मनुष्य के हृदय में भी ज्यों-की-त्यों निर्दोष रहती है।

वह अमर है, विकार-रहित है, सबमें समान-रूप से व्याप्त है। आरोग्य उसे सौंदर्य प्रकट करने के लिये बुलाता है, और व्यासंग उसके मुख-मंडल को ज्ञान के तैल से कांतिमान् बना देता है।

यद्यपि वह तेरे पश्चात् भी क़ायम रहेगी, तथापि यह न समझ कि वह तेरे पहले उत्पन्न हुई है। तेरे शरीर की रचना के साथ उसकी सृष्टि हुई है; और तेरे शरीर के साथ ही उसका ढाँचा तैयार हुआ है।

न तो न्याय-दृष्टि तुझे सद्गुण-संपन्न और न दया-दृष्टि पाप-विकृत आत्मा दे सकती है। न्याय और दया-दृष्टि तुझ पर ही अवलंबित है. तू ही उनके लिये जवाबदेह है।

यह खयाल न कर कि मृत्यु तुझे कृत कर्मों के फल से बचा सकेगी। यह न सोच कि शील-भ्रष्टता तुझे तहक़ीक़ात से

छिपा सकेगी। ईश्वर की सत्ता असीम है। उसकी लीला अगाध है—उसके लिये कोई बात असंभव नहीं।

क्या मुर्ग़ा मध्य रात्रि के समय को नहीं जानता? क्या वह तुमसे यह कहने के लिये कि सवेरा हो गया, बाँग नहीं देता? क्या कुत्ता अपने स्वामी के पाँवों की आहट को नहीं पहचानता? और क्या घायल बकरा अपने घावों को आराम करनेवाली वनस्पति की ओर नहीं दौड़ जाता? तो भी जब ये मरते हैं, तब इनकी आत्मा पंचत्व को प्राप्त हो जाती है। अकेली तेरी आत्मा ही पीछे बच रहती है।

पशु-पक्षियों की इंद्रियाँ तेरी इंद्रियों से अधिक तेज़ हैं, इसलिये उनकी ईर्ष्या न कर। यह जान कि अच्छी वस्तुओं को केवल प्राप्त कर रखने में फ़ायदा नहीं, वल्कि यह जानने में है कि उनका उपयोग किस तरह करना चाहिए।

क्या बारहसिंगे के-से तेरे कान हैं? या तेरी आँखें गरुड़ की तरह तीखी और आबदार हैं? क्या तेरी नाक ने सूँघने में शिकारी कुत्तों की समता की है? बंदर ने अपना स्वाद तुझे दिया है, या कच्छप ने अपनी भावनाएँ दी हैं? यदि दी होतीं, तो भी बिना बुद्धि के वे तेरे किस काम की हैं? क्या ये अन्य प्राणियों की तरह मर नहीं जातीं?

क्या इनमें किसी को भी मिष्ट और समयोचित वाणी प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त है? क्या ये तुझे अपने किसी कार्य का कारण बता सकती हैं?

बुद्धिमान्—चतुर—मनुष्य के होंठ राज-सभा के द्वार की तरह हैं; वे खोले नहीं गए कि उनकी संपदा तेरे सामने आई नहीं।

देख, उचित अवसर पर कही गई समझ की बात चाँदी के गमले में उगे हुए सोने के पौदों की तरह होती है।

क्या तू अपनी आत्मा के विषय में अधिक-से-अधिक विचार कर सकता है? या उसकी प्रशंसा में बहुत कुछ कहा जा सकता है? यह तो उसी ईश्वर की प्रति-मूर्ति है, जिसने तुझे उसे दिया है।

उसके गौरव को तू सदा याद रख; यह न भूल कि कितनी विशाल बुद्धि तेरे सिपुर्द की गई है।

जो वस्तु फ़ायदा करती है, उससे बुरा भी हो सकता है। इसलिये ध्यान रख कि तुझे उसे सद्‌गुणों की ओर ही प्रेरित करना है।

यह न मान कि जन-समूह में वह कहीं खो जायगी; यह कल्पना न कर कि तू उसे अपने हृदय-कपाट में बंद कर सकेगा। उसे तो कर्म करने में ही प्रसन्नता है। उससे उसे कोई पराङ्मुख नहीं कर सकता। उसकी गति नित्य और उसके कार्य सार्वदेशिक हैं; उसका चलन-प्रचलन दुर्दमनीय है। यदि वह पृथ्वी के बड़े-से-बड़े भाग पर हो, तो भी वह उस वस्तु को प्राप्त कर लेगी; यदि वह तारकाओं के प्रदेश भी से परे हो, तो भी उसकी आँखें पता लगा लेंगी।

नवीन खोजों में उसे बड़ा आनंद आता है। प्यासा मनुष्य पानी की खोज में तपी हुई बालू पर भी भटकता है। ठीक यही दशा ज्ञान-पिपासु आत्मा की है।

उसकी हिफ़ाज़त कर; क्योंकि वह अल्हड़ है। उसको वश में रख; क्योंकि वह अनियम-निष्ठ है। उसके व्यवहार को सुधार; क्योंकि वह बड़ी उग्र है। वह पानी से अधिक तरल, मोम से अधिक मुलायम और हवा से अधिक नम्र है। क्या उसे कोई आसानी से नियमित कर सकता है?

सारासार-विचार-हीन मनुष्य में आत्मा का होना ऐसा ही है, जैसे किसी उन्मत्त मनुष्य के हाथ में तलवार।

सत्य उसकी खोज का ध्येय है। उसकी प्राप्ति के जो साधन उसके पास हैं, वे हैं तर्क और अनुभव। पर क्या ये अशक्त, अनिश्चित और भ्रम-पूर्ण नहीं हैं? तब यह कैसे वहाँ तक पहुँच पावेगी?

सामान्य लोगों की सम्मति सत्य का प्रमाण नहीं है। मनुष्य-समाज सामान्यतः ज्ञान-हीन है।

स्वात्म-बोध, अपने स्रष्टा का ज्ञान, उसकी पूजा का खयाल—जो तेरा धर्म है—क्या तेरे सामने स्पष्ट-रूप से नहीं हैं? मनुष्य के लिये इनसे अधिक निश्चय-पूर्वक जानने-योग्य और कौन-सी बात है?

चौथा अध्याय

मानवीय जीवन की अवधि और उसका उपयोग

चंडूल पक्षी के लिये जिस प्रकार प्रभात का दृष्टिपात, उल्लू के लिये संध्या की छाया, और मधु-मक्खी के लिये शहद प्रिय है. उसी प्रकार जीवन मनुष्य के हृदय को प्रिय है।

यद्यपि यह उज्ज्वल है. तो भी चकाचौंध नहीं करता; अज्ञात है, तो भी जी ऊबने नहीं देता; मधुर है. तो भी अरुचिकर नहीं—अघाने नहीं देता; पतित है. तो भी त्याज्य नहीं। इतने पर भी ऐसा कौन है, जो इसकी सच्ची क़ीमत जानता हो?

जीवन की यथेष्ट कदर करना सीख। इससे तू ज्ञान के शिखर के नजदीक पहुँच जायगा।

मूर्ख की तरह यह न सोच कि जीवन से बढ़कर कोई वस्तु मूल्यवान नहीं; और न समझदार का स्वाँग बनानेवाले की तरह यह विश्वास कर कि वह तिरस्करणीय है। तू अपने लिये नहीं, वरन् उस नेकी के लिये उसके साथ प्रेम कर, जो उसके द्वारा दूसरे के साथ की जा सकती है।

सुवर्ण उसे तेरे लिये खरीद नहीं सकता; और न हीरे की खानें ही उस क्षण को तेरे लिये फिर से खरीद ला सकती हैं, जिसे तूने खो दिया है। इसलिये प्रत्येक क्षण का उपयोग सद्गुणों की प्राप्ति में कर।

ऐसा न कह कि यदि पैदा न हुआ होता, तो बहुत अच्छा

होता, या यदि उत्पन्न हुआ, तो बेहतर था कि जल्दी मर जाता; न अपने पैदा करनेवाले को यह दोष लगाने का साहस कर कि "मेरा जन्म न हुआ होता, तो कौन-सी बुरी बात थी" भलाई तेरे वशकी बात है, और भलाई का अभाव ही बुराई है। अतएव तू ईश्वर को दोष देकर क्या स्वयं अपने को ही दोषी नहीं सिद्ध करता?

मछली यदि यह जान जाय कि वंसी के नीचे काँटा लगा हुआ है, तो क्या वह उसे निगलेगी? सिंह यदि यह जान ले कि यहाँ जाल है, तो क्या उसमें पड़ेगा? यदि यह आत्मा देह के ही साथ नष्ट होनेवाली होती, तो न तो मनुष्य जीवित रहने की इच्छा करता, और न उस दयामय परमात्मा ने उसे उत्पन्न ही किया होता। इसलिये यह जान कि मृत्यु के बाद भी जीवित रहेगा।

जो पत्ती पिंजड़े को देखने के पहले ही उसमें बन्द कर दिया जाता है, वह उसकी छड़ों से टक्कर नहीं लेता। इसी प्रकार तू भी अपनी प्राप्त स्थिति से निकल भागने का व्यर्थ प्रयत्न—परिश्रम-न कर। यह समझ कि यह ईश्वर-दत्त है। इसी में संतुष्ट रह।

यद्यपि उसका मार्ग कठिन है, तो भी वह कष्टकर नहीं। बस, अपने को उसके अनुकूल बना ले। जहाँ कहीं तुझे थोड़ी भी बुराई दिखाई दे, वहाँ भारी खतरे की आशंका कर।

यदि घास-फूस तेरा बिछौना है, तो तू बेखटके सो जा। पर यदि तू गुलाब की सेज पर लेटता है, तो होशियार रह। वहाँ काटे भी हैं।

दुर्जीवन से सन्मृत्यु अच्छी है, इसलिये तू उतना ही जीने का प्रयत्न कर, जितना कि अभीष्ट है, न कि जितना तू जी सकता है। जब तक तेरा जीवन लोगों की दृष्टि में तेरी मृत्यु से भी अधिक मूल्यवान् है, तब तक तेरा कर्तव्य है कि तू उसकी रक्षा कर।

मूर्खों की तरह अपनी आयु की कमी की शिकायत न कर; क्योंकि तेरी आयु की बढ़ती के साथ-साथ तेरी चिंताएँ भी कम होती जाती हैं।

अपने जीवन-काल में से निरुपयोगी अंश निकाल दे। तब क्या-क्या शेष बचता है? अपने शैशव, युवावस्था, निद्रा, निठल्लेपन और बीमारी का काल निकाल कर देख कि अब संपूर्ण जीवन में कितना उपयोगी अंश वास्तव में रहा?

जिसने तुझे प्रसाद के तौर पर यह जीवन दिया है, उसने उसे अल्प करके अधिक प्रसाद-रूप बना दिया है। दीर्घ जीवन से तेरे किस उद्देश्य की पूर्ति होगी? क्या तू अधिक पापों के अवसर मिलने की इच्छा करता है, अथवा भलाई के लिये? यदि हाँ, तो जिसने तेरी आयु की सीमा बाँध दी है, वह क्या उसके फलों को देखकर संतुष्ट न होगा?

किस प्रयोजन से, ऐ दुखी मनुष्य, तू अधिक दिन जीना चाहता है? क्या साँस लेने और छोड़ने, खाने-पीने और दुनिया को देखने के लिये? यह सब तो तू पहले ही कर चुका है। क्या इनका अतिरेक कष्टकर नहीं है—आवश्यकता से अधिक नहीं है?

क्या अपने ज्ञान और सद्गुणों की वृद्धि करना चाहता है? अफ़सोस! तुझे क्या जानना है? तुझे सिखानेवाला कौन है? अरे, जो कुछ तेरे पास है, उसका ही उपयोग तू बुरी तरह करता है। तब यह शिकायत करने का साहस कैसे करता है कि अधिक आयु नहीं मिली?

ज्ञान के अभाव पर शोक न कर; वह तेरे साथ ही चिता में जलेगा। बस, इस लोक में तू ईमानदारी से रह। इससे दूसरे जन्म में बुद्धिमान् हो जायगा।

कौए से शिकायत न कर कि तुझे मनुष्य की आयु से सातगुनी आयु क्यों प्राप्त है? मृग-शावक से न कह कि तेरी आँखें मनुष्य-संतान की हज़ारों पीढ़ियों तक देखने के लिये क्यों क़ायम रहती हैं? क्या जीवन के दुरुपयोग में उनकी तुलना तेरे साथ हो सकता है? क्या वे तेरी तरह बाग़ी हैं, निर्दय, अथवा कृतघ्न हैं? अरे, उनसे यह शिक्षा ग्रहण कर कि जीवन की निर्दोषिता और सादगी, श्रेष्ठ वृद्धावस्था के मार्ग हैं।

क्या तू इनकी अपेक्षा अपने जीवन का उपयोग अधिक अच्छा करना जानता है? तब तो उसका थोड़ा अंश भी तेरे लिये काफ़ी है।

जो मनुष्य संसार को ग़ुलाम बनाने का साहस करता है, वह यह जान ले कि मैं कुछ क्षणों तक ही अत्याचार से आनंद भोग सकता हूँ। यदि वह अमर हो, तो क्या-क्या नहीं करेगा?

तुझे जो जीवन मिला है, वह काफ़ी है; परंतु तू उसका

कुछ खयाल नहीं करता। तेरे पास उसकी कमी नहीं है, परंतु ऐ मनुष्य, तू अपव्ययी है। तू उसे ऐसे ढीले हाथों खर्च करता है, मानो वह तेरे पास आवश्यकता से भी अधिक है। फिर भी यह शिकायत करता है कि वह फिर नहीं मिलता!

यह जान कि समृद्धि नहीं, बल्कि परिमितता मनुष्य को धनवान् बनाती है।

बुद्धिमान् मनुष्य कार्य को शुरू कर उसे समाप्त करता है, परतु मूर्ख 'श्रीगणेश' ही किया करता है।

यह न सोच कि पहले संपत्ति के लिये परिश्रम कर लें, पीछे उपभोग कर लेंगे। जो वर्तमान की उपेक्षा करता है, वह अपने पास का सब कुछ खो देता है। जैसे कोई तीर योद्धा के बिना जाने ही आकर छाती में घुस जाता है, उसी प्रकार उसका जीवन बिना उसके जाने ही चला जाता है।

तब यह जीवन क्या है, जिसके लिये मनुष्य इतना लालायित रहता है? यह श्वासोच्छ्वास क्या है, जिसका मनुष्य इतना लोभ करता है?

क्या यह भूलों का दृश्य नहीं है, दुःसाहस नहीं है, केवल बुराइयों का उद्योग नहीं है? यह आरंभ में अज्ञान है, मध्य में कष्ट, और अंत में दुःख है!

जिस प्रकार एक लहर दूसरी को धक्का देती और दोनो मिलकर अपनी पीछेवाली लहर में मिल जाती हैं, उसी प्रकार बुराइयाँ मनुष्य के जीवन में एक के बाद एक आती हैं। जो

बड़ी और वर्तमान हैं, वे छोटी को निगल जाती हैं। हमारी भीति ही वास्तविक बुराई है। हमारी अपेक्षाएँ अनहोनी बातों की लालसा लगाए रहती हैं।

भीति के समय मूर्ख मनुष्य अपने को मर्त्य मानते हैं, और अभिलाषा के समय अमर।

जीवन का वह कौन-सा अंश है, जिसे हम अपने साथ रखना चाहते हैं? क्या युवावस्था? क्रोध, कामुकता, विषयाभिलाषा और भीरुता, या वृद्धावस्था? यदि हाँ, तो क्या हम दुर्बलताओं—यातनाओं—के प्रेमी हैं?

कहते हैं, सफ़ेद बालों की—बुढ़ापे की—इज्ज़त की जाती, और ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों आदर होता है। परंतु सद्गुण जवानी के जौहर में आदर का मेल करता है। इसके अभाव में वृद्धावस्था शरीर की अपेक्षा आत्मा को ही अधिक निस्तेज करती है।

क्या वृद्धावस्था का आदर-मान इसलिये होता है कि वह उपद्रवों से घृणा करती है? नहीं। बुढ़ापा व्यसन और विषयों का तिरस्कार नहीं करता, बल्कि व्यसन और विषय ही उसका तिरस्कार करते हैं।

इसलिये ऐ मनुष्य! युवावस्था में सद्गुणी बन, जिससे वृद्धावस्था में तेरी प्रतिष्ठा हो।

मनुष्य

उसकी दुर्बलताएँ और दोष

पहला अध्याय

अभिमान

मनुष्य के हृदय में चंचलता का ज़ोर है; असंयम उसे जिधर जी चाहे ले जाता है, निराशा उसे प्रायः निगल लेती है, और भय पुकार-पुकारकर कहता है—यहाँ मेरा कोई प्रति-स्पर्धी नहीं। परंतु इन सबकी अपेक्षा अभिमान का अंश उसमें सबसे ज्यादह है।

इसलिये मानवीय अवस्था की मुसीबतों पर आँसू न बहा, बल्कि उसकी मूर्खताओं पर हँस। जिन मनुष्यों का अभिमान अनियंत्रित है, उनके हाथों में जीवन स्वप्न की परछाहीं की तरह है।

नाटक या उपन्यासों के चरित्र-नायक, जो अन्य पात्रों की अपेक्षा अधिक उच्च चित्रित किए जाते हैं, इस अभिमान-रूपी दुर्बलता के बुद्बुद के सिवा और क्या हैं? सर्व-साधारण तो अस्थिर और कृतघ्न हैं। फिर मूर्खों के लिये बुद्धिमान् अपने को खतरे में क्यों डालें?

जो अपने वर्तमान कार्यों की उपेक्षा कर भविष्य की

महत्ता का विचार करता है, वह मानो हवा का भक्षण करता है। इधर उसकी रोटी दूसरे ही खा जाते हैं।

अपनी वर्तमान अवस्था के अनुसार व्यवहार कर, जिससे अधिक उच्च स्थिति में पहुँचने पर तुझे लज्जित न होना पड़े।

अभिमान की तरह और कौन वस्तु है, जो मनुष्य की आँखों को अपने आप अंधा कर देती और हृदय को छिपा देती है? देख, जब तू अपने तईं नहीं देख सकता, तब दूसरे लोग साफ़ तौर पर तेरा पता पा लेंगे।

जैसे सेमर के नेत्ररंजक फूल सुगंध के बिना निष्प्रयोजन हैं, उसी तरह वह मनुष्य भी निरर्थक है, जो अपने को बहुत ऊँचे पद पर बिठा तो लेता है, परंतु उसके अनुसार योग्यता नहीं रखता।

अभिमानी मनुष्य का हृदय यद्यपि ऊपर से संतुष्ट दिखाई पड़ता है, तो भी अंदर वह व्यथित रहता है। उसके आनंद की अपेक्षा उसकी चिंताएँ अधिक होती हैं।

उसकी घोर चिंताएँ उसकी अस्थियों के साथ नहीं जल जातीं; चिता भी उन्हें दहन नहीं कर सकती। वह अपने जड़ शरीर के बाहर अपने विचारों को ले जाता है, और पहले से सोचा करता है कि मेरी मृत्यु के बाद मेरा गुण-गान किया जाय। परंतु जो ऐसा करने का अभिवचन देता है, वह उसे धोखा देता है।

जिस तरह कोई मनुष्य अपनी पत्नी से कह दे कि मेरे

मरने पर तू इस तरह से रहना, जिसमें मेरी आत्मा अशांत न हो; ठीक उसी तरह वह मनुष्य है, जो यह अपेक्षा करता है कि मेरी स्तुति पाताल में भी मेरे कानों तक पहुँचे, या कफ़न में भी मेरे हृदय को प्रफुल्लित करे।

जब तक जीवन है, सत्कार्य कर। इस बात का ख़याल न कर कि लोग उनके विषय में क्या कहते हैं। जिस स्तुति के योग्य है, उसी से संतुष्ट रह। भविष्य संतानें उसको सुन-सुनकर गद्गद होंगी।

जिस प्रकार तितली अपने रंगों को नहीं देख पाती, जुही अपने आस-पास उड़नेवाली सुगंध को नहीं जान सकती, उसी प्रकार प्रसन्न-चित्त मनुष्य को ख़ुद अपने गुण नहीं दिखाई देते। उसकी परीक्षा के लिये दूसरों की ही जरूरत होती है।

वह कहता है कि मेरे रत्न-जड़ित वस्त्राभूषण किस काम के हैं? अच्छी-अच्छी चीज़ों से सुसज्जित मेरी मेज़ किसलिये है, जब कि इसे देखने और जाननेवाला ही कोई नहीं है? परंतु यदि वह यह चाहता हो कि संसार उसकी प्रशंसा करे, और वह उसका पात्र हो, तो उसे चाहिए कि वह नंगों-भूखों को अपने वस्त्र और भोजन-सामग्री दे दे।

हरएक मनुष्य से बे-मतलब की बातें कहकर चापलूसी क्यों करता है? तू जानता है कि जब वह तुझसे वैसी ही बातें करेगा, तब तू उन्हें पसंद न करेगा। वह जानता है—मैं झूठ

बोलता हूँ। फिर भी समझता है कि तू इसके लिये उसे धन्यवाद देगा। शुद्ध भाव से बोल। इसके बदले में तुझे शिक्षा मिलेगी।

घमंडी मनुष्य अपने ही विषय की बातें करने में आनंद मानता है। वह नहीं जानता कि दूसरे लोग उसके मन की बातें सुनना पसंद नहीं करते।

यदि उसने कोई भी काम प्रशंसा के योग्य किया है, उसमें कोई भी बात स्तुति के योग्य पाई जाती है, तो वह उसकी घोषणा करने में हर्ष मानता है। उसको दूसरों के द्वारा इन बातों का वर्णन सुनकर अभिमान होता है। ऐसे मनुष्य की इच्छाएँ स्वयं ही उसको विफल कर देती हैं। लोग यह नहीं कहते—देखो, उसने यह किया है, उसके पास यह है; बल्कि वे कहते हैं—देखो, उसे इस बात का कितना घमंड है।

मनुष्य का ध्यान एक ही समय बहुत-सी बातों पर स्थिर नहीं रहता। जिसका मन बाहरी दिखावे पर ही मुग्ध हो जाता है, वह असली वस्तु से हाथ धो बैठता है। वह उस मनुष्य की तरह है, जो क्षुद्र बुलबुलों के पाने का तो प्रयत्न करता है, परंतु जिसके द्वारा उसका गौरव बढ़ सकता है, उस वस्तु को पैरों-तले रौंदता है।

दूसरा अध्याय

चंचलता

ऐ मनुष्य ! प्रकृति तुझे चंचलता की ओर झुकाती है; उससे सावधान रह।

तू मा के गर्भ से ही चंचल और विविध है, और अस्थिरता तुझे पिता के वीर्य से प्राप्त हुई है। तब, तू भला कैसे दृढ़-चित्त रहेगा ?

जिन्होंने तुझे यह शरीर दिया है, उन्हीं ने तुझे कमजोरी भी दी है; परंतु जिसने तुझे आत्मा दी है, उसने तुझे निश्चय से भी विभूषित किया है। उसका सेवन करने से तुझे ज्ञान प्राप्त होगा, और ज्ञान से सुख।

जो मनुष्य नेक काम करता है, उसको इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि वह उसकी कितनी डींग हाँकता है; क्योंकि मनुष्य अपनी इच्छा से नेक काम बहुधा कम करता है।

क्या मनुष्य किसी बाहरी उत्तेजना से नेक काम नहीं कर सकता ? अनिश्चितता से तो वह उत्पन्न होता नहीं ? दैवयोग से तो वह प्रेरित है नहीं ? अथवा किसी अन्य बात पर तो उसकी हस्ती है नहीं ? यदि हाँ, तो ये सब बातें तथा दैवयोग ही वास्तव में स्तुति के पात्र हैं, मनुष्य नहीं।

किसी कार्य के करने का विचार करते समय जो अनिश्चय मन में होता है, उससे सावधान रह। फिर, कार्य-संपादन करते समय आनेवाली अस्थिरता से भी होशियार रह।

ऐसा करने ही से तू अपनी प्रकृति की इन दो महान् दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करेगा।

असंगत काम करने से बढ़कर तर्क की निंदा और क्या हो सकती है, और मन की दृढ़ता के सिवा इस प्रवृत्ति को दबानेवाला और कौन है ?

अस्थिर मनुष्य यह तो अनुभव करता है कि मेरी स्थिति में परिवर्तन हो रहा है, परंतु वह उसका कारण नहीं जानता। वह यह भी देखता है कि मैं खुद अपनी नज़र से भी बच जाता हूँ, परंतु यह नहीं जानता कि ऐसा होता क्यों है। इसलिये जो बात ठीक है—उचित है—उसे करते समय अपनी हलचल में रद्दोबदल न कर। तभी लोग तुझ पर विश्वास करेंगे।

कार्य के तत्त्वों को अपने हृदय में प्रतिबिंबित कर; ठीक उनके अनुसार वर्ताव कर। पहले यह जाँच ले कि तेरे तत्त्व-सिद्धांत ठीक हैं; फिर उनका व्यवहार करते समय उन पर अटल रह।

इससे तेरे मनोविकार तुझ पर अपनी हुकूमत न चला सकेंगे। तेरी स्थिरता तुझे अपने गुणों, अपनी नेकियों का निश्चय दिलावेगी—दुर्दैव को तेरे दरवाज़े से भगा देगी। चिंता और निराशा तेरे घर का रास्ता तक न जानेंगी।

जब तक तू अपनी आँखों किसी की बुराई को देख न ले, उसके बुरे होने का संशय न कर। पर यदि एक बार देख ले, तो फिर उसे मत भूल।

जो दुश्मन रह चुका है, वह मित्र नहीं हो सकता; क्योंकि मनुष्य अपने दोषों का—बुराइयों का—सुधार नहीं करता।

जिसने अपने जीवन के नियम ही स्थिर नहीं किए, उसके कार्य कैसे ठीक हो सकते हैं? जो बात तर्क-सिद्ध नहीं, वह ठीक नहीं हो सकती।

चंचल मनुष्य की आत्मा को शांति नहीं। और तो और, उसके मित्र और संबंधी भी उसे आराम नहीं पहुँचा सकते। उसका जीवन विषम, और गति अनियमित होती है; उसका अंतःकरण हवा के रुख़ के अनुसार बदलता रहता है।

आज वह तुझसे प्रेम करता है, पर कल ही घृणा करने लगेगा। क्यों? वह ख़ुद ही नहीं जानता कि किसलिये उसने तुझसे प्रेम किया था, और अब क्यों तुझसे नफ़रत करता है?

आज वह तुझ पर अत्याचार करता है, पर कल ही वह इतना नरम हो जायगा कि तेरे नौकर की नम्रता तुझे उससे कम मालूम होगी; क्योंकि जो बिना अधिकार के घमंडी है, वह उस जगह भी अपने को गुलाम से बढ़कर बना लेगा, जहाँ गुलामी का पता तक नहीं है।

आज वह फ़ुज़ूल-ख़र्च है, कल वही गिनकर पैसा रक्खेगा। जो परिमितता को नहीं पहचानता, उसकी ऐसी दशा क्यों न हो?

गिरगिट अभी काला दिखाई देता है, पर दूसरे ही क्षण उस पर हरी घास की हरियाली छा जाती है? उसे काला कौन कह सकता है?

अस्थिर मनुष्य को कौन प्रसन्न कर सकता है, जब दूसरे ही क्षण उसके मुँह से लंबी साँसें निकलने लगती हैं ?

ऐसे मनुष्य का जीवन स्वप्न के भूत के सिवा और क्या है ? यदि वह प्रातःकाल प्रसन्नता के साथ उठता है, तो दोपहर को काँटों की सेज पर पड़ा हुआ दिखाई देता है।

अभी इस घड़ी यदि वह देवता है, तो थोड़ी ही देर में एक तुच्छ कीड़ा दिखाई देता है। कभी वह हँसने लगता है, तो कभी रोने। अभी वह किसी बात की इच्छा करता है, पर क्षण में ही अनिच्छा प्रकट कर देता है। थोड़ी ही देर बाद उसे यह भी पता नहीं रहता कि मैं इच्छा करता भी हूँ या नहीं !

तो भी न तो आराम और न कष्ट ही उसके पास ठहरते हैं; न तो उसकी चिढ़ अधिक होती है, न कम; न उसके पास हँसी के लिये कारण है, न दुःख के लिये। इसलिये न हर्ष, और न विषाद—कोई भी उसका साथ नहीं देता।

चंचल-चित्त मनुष्य का सुख बालू पर बनाए हुए महल की तरह है। हवा का एक ही झोंका उसकी नींव को हिला देता है। यदि वह गिर जाय, तो आश्चर्य ही क्या ?

पर यह कौन-सी उच्च और विशाल मूर्ति है, जो समानतया बेरोक मार्ग बताती है; जिसका पैर पृथ्वी पर है और सिर बादलों से भी ऊँचा है ?

भव्यता उसकी भौंहों पर निवास करती है। उसकी चाल-ढाल में स्थिरता, और उसके हृदय में शांति का राज्य है।

विघ्न यद्यपि उसके रास्ते में आते हैं, पर वह उनकी ओर देखती तक नहीं। तमाम पृथिवी और आकाश उसके मार्ग में बाधा क्यों न डालें, वह बराबर बेरोक आगे बढ़ती चली जाती है।

पहाड़ उसके क़दम के नीचे दब जाते हैं। उसके पैर पड़ते ही समुद्र का पानी सूख जाता है।

शेर उसका रास्ता रोककर खड़ा हो जाता है, पर उसकी दाल नहीं गलती। चीते के पद-चिह्न उसके मार्ग में चमकते रहते हैं; पर वह उनकी परवा नहीं करती।

वह सीधे युद्ध कर रही सेना के बीच चली जाती है, और अपने हाथों से मृत्यु के भय को हटाती है।

तूफ़ान उसके कंधों पर गरजता रहता है; परंतु उन्हें हिला तक नहीं सकता। मेघ-गर्जन उसके सिर के आस-पास हुआ करता है, परंतु बेकार। बिजली भी चमकती है, पर इससे उलटे उसी के मुख-मंडल का तेज प्रकाशित होता है।

उसका नाम है दृढ़ निश्चय! वह पृथिवी के दूर-दूर के स्थानों से आता है, सुख को बहुत दूर से अपनी आँखों के सामने देखता है। उसके नेत्र सुख के मंदिर के दरवाज़े को देख लेते हैं, चाहे वह ध्रुव-प्रदेश के भी परे क्यों न हो?

वह मंदिर तक जाता, और बेधड़क उसमें घुसकर सदा वहीं रहता है।

अतएव जो सत् है, उसी में अपने अंतःकरण को लगा।

तब तुझे मालूम होगा कि स्थिर-चित्त होना ही बड़ी-से-बड़ी मानवीय स्तुति का पात्र होना है।

तीसरा अध्याय

दुर्बलता

हे अपूर्णता की संतान! जब तू घमंडी और चंचल है, तो दुर्बल के सिवा और क्या हो सकता है? क्या चंचलता का संबंध दुर्बलता से नहीं है? क्या अस्थिरता के विना भी कहीं वृथा अभिमान हो सकता है? इसलिये तू एक के खतरे से अपने को बचा। इससे दूसरे के उपद्रवों से अपने को दूर पावेगा।

तू कहाँ ज्यादह कमजोर है? जहाँ तुझे यह मालूम होता हो कि मैं बहुत बड़ा बली हूँ, जहाँ तू अपने को बड़ा भारी गण्य-मान्य समझता हो, जहाँ उस वस्तु की और भी अधिक प्राप्ति करने का प्रयत्न करता हो, जो तेरे पास है, और जहाँ तू अपने नजदीकी अच्छी चीजों से लाभ उठाता हो।

क्या तेरी अभिलाषाएँ कमजोर नहीं हैं? या तू यह भी जानता है कि मैं किस चीज को चाहता हूँ? जिस चीज की तू बड़ी खोज में रहता है, उसके मिल जाने पर तू देखेगा कि उससे तुझे संतोष नहीं होता।

जो सुख तेरे सामने है, वह तुझे फीका क्यों मालूम होता है? भावी वस्तु तुझे क्यों अधिक मीठी लगती है? इसलिये कि

प्रत्यक्ष सुख के लाभों से तू घबरा उठा है, और नहीं जानता कि जो वस्तु अभी तेरे पास नहीं है, उसमें क्या-क्या दोष हैं।

संतोष में ही सुख है, इस मंत्र को याद रख। क्या तू आप अपना निर्णय कर पाया है ? क्या वह सिरजनहार तुझे अपनी तमाम अभिलषित वस्तुएँ ला देगा ? क्या उस अवस्था में सुख तेरे पास रह सकेगा, या आनंद तेरे दरवाजे पर सर्वदा टिका रहेगा ?

अफ़सोस ! तेरी दुर्बलता उसे रोकती है ! तेरी अस्थिरता उसके ख़िलाफ़ फ़तवा देती है। आनद के बजाय तुझे विविधता के दर्शन होते हैं. लेकिन चिरस्थायी सुख तो चिरस्थायी वस्तु से ही मिल सकता है।

जब वह सुख नष्ट हो जाता है, तब तू उसके अभाव पर सिर पीटता है; परंतु जब तक वह तेरे पास था, तू उससे दूर भागता रहा।

उसके स्थान पर जो वस्तु तुझे मिली है, उससे तुझे अधिक काल तक आनंद नहीं मिलता, और पीछे तू अपने ही दिल को कोसता है कि मैंने उसे क्यों अच्छा समझ लिया। अतएव केवल ऐसी ही स्थिति पर दृष्टि रख, जिसमें तुझसे ग़लती न होने पावे।

किसी वस्तु की अभिलाषा करने के अलवा और भी कोई ऐसी वस्तु है, जिसमें तेरी दुर्बलता अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देती हो ? हाँ, है; और वह है, वस्तुओं का संग्रह और उनका उपयोग करना।

जब हम अच्छी वस्तुओं का उपभोग करने लगते हैं, तब उनका अच्छापन चला जाता है। प्रकृति ने जिन्हें शुद्ध और मधुर बनाया है, वे हमारे लिये कटुता के कारण हो जाती हैं। हमारे आनंद और हर्ष से कष्ट और दुःख उत्पन्न होते हैं।

इसलिये अपने सुख-भोग को एक सीमा में रख। इससे वह अधिक समय तक तेरे पास रह सकेगा। तर्क को अपने हर्ष का आधार बना। इससे हर्ष का अंत होने पर दुःख तेरे लिये एक परकीय वस्तु हो जायगी।

प्रेम के आनंद का आरंभ आहों के साथ होता है, और अंत दुःख और खिन्नता के साथ। जिस वस्तु के लिये तू कभी व्याकुल था, उससे तेरा जी अघा जाता है; और तब ज्यों ही वह तेरे पास आई नहीं कि उसको देखते ही तेरा जी ऊबा नहीं।

प्रशंसा के साथ आदर भी प्राप्त कर। प्रेम के साथ मित्रता का मिलाप कर। इससे अंत में तुझे इतना संतोष होगा, जो अत्यानंद से भी बढ़कर है—इतनी शांति मिलेगी, जो ब्रह्मानंद से भी अधिक है।

परमात्मा ने तुझे जो अच्छी बातें दी हैं, वे बुराई से खाली नहीं हैं। साथ ही उसने उस बुराई को निकाल डालने के साधन भी तुझे दिए हैं।

जैसे हर्ष दुःख-रहित नहीं है, वैसे दुःख भी बिना थोड़े-बहुत आनंद के नहीं है। सुख और दुःख, दोनो यद्यपि एक दूसरे से भिन्न हैं, तथापि वे एक दूसरे से मिले हुए हैं। उनमें

से किसको पाना और किसको नहीं—यह पूर्णतः तुझ पर अवलंबित है।

बहुत बार तो स्वयं विषाद ही आनंद देता है, और आनंद के अतिरेक में आँसू छिपे रहते हैं।

अज्ञानी के हाथ में यदि अच्छी-से-अच्छी वस्तु हो, तो भी वह उसके द्वारा अपना विनाश कर बैठता है; पर बुद्धिमान् मनुष्य बुरी-से-बुरी चीज़ से भी अच्छा नतीजा निकाल लेता है।

ऐ मनुष्य! तेरे जीवन में इतनी कमज़ोरी भरी हुई है कि तुझमें न तो पूरा सज्जन बनने की और न पूरा दुर्जन होने की ही शक्ति है। बस, तू इसी बात पर आनंद मना कि तू दुर्जनता की सीमा तक नहीं पहुँच सकता। तेरे पास जो सज्जनता है, उसी पर संतोष कर।

सद्गुण का निवास भिन्न-भिन्न स्थितियों और स्थानों में है। इसलिये जो बात अशक्य है, उसके पीछे न पड़; यदि तमाम सद्गुणों को प्राप्त न कर सकता हो, तो अफ़सोस न कर।

क्या तू चाहता है कि धनवानों का-सा औदार्य और दीनों का-सा संतोष तुझमें एक ही साथ आ जाय? अथवा यदि तेरी हृदय-देवी में वे सद्गुण न हों, जो विधवाओं में दिखाई देते हैं, तो क्या तू उसका तिरस्कार करेगा?

यदि तेरे पिता तेरे देश में फूट फैलाने में निमग्न हो जायँ, तो क्या तेरी न्याय-बुद्धि उनका अस्तित्व मिटा देगी—तेरी कर्तव्य-बुद्धि उन्हें बचा लेगी?

यदि तेरा भाई मंद मृत्यु की पीड़ा से व्यथित हो, तो उसके जीवन की अवधि को बढ़ाना क्या दया नहीं है? क्या उसकी हत्या कर डालना मृत्यु नहीं है?

सत्य केवल एक है। तेरे संशय तेरी ही कल्पनाओं की उपज हैं। जिसने सद्गुणों का, उनके वर्तमान रूप में, निर्माण किया है, उसने तुझे उनकी श्रेष्ठता का ज्ञान भी दिया है। इसलिये अपनी आत्मा के संकेत के अनुसार चल। इसका फल सदा अच्छा ही होगा।

चौथा अध्याय

ज्ञान की अपर्याप्तता

वह कौन-सी वस्तु है, जो प्रिय है, वांछनीय है, मनुष्य की पहुँच के अंदर प्रशंसनीय है? क्या वह ज्ञान नहीं है? पर फिर भी ऐसा कौन है, जो उसका सपादन करता है?

राजकाजी लोग पुकारकर कहते हैं कि ज्ञान हमारे पास है। राजा भी अपने ज्ञान की प्रशसा पाने का दावा रखता है। किंतु क्या प्रजाजन इस बात का साक्ष्य देते हैं?

बुराई मनुष्य के लिये आवश्यक वस्तु नहीं है और न पाप को सहन करना ही आवश्यक है। फिर भी क़ानून को आनाकानी करने से कितनी बुराइयाँ होती हैं? कौंसिलों के निर्णय से कितने अपराध होते हैं?

इसलिये हे राजा ! तू बुद्धिमानी से काम ले। यदि तू अनेक राष्ट्रों पर शासन करना चाहता हो, तो तुझे याद रखना चाहिए कि एक अपराध करने की क्षमता दे देना उन दस अपराधों से अधिक बुरा है, जो तेरे दंड से बच जाते हैं।

जब तेरी प्रजा की संख्या बहुत बढ़ जाती है, और तेरे साथ भोजन करनेवाले तेरे साथी भी बहुत हो जाते हैं, तब क्या तू उन्हें निरपराध मनुष्यों का संहार करने के लिये नहीं भेजता ? क्या तू उस मनुष्य की तलवार का शिकार होने के लिये उन्हें प्रेषित नहीं करता, जिनका कुछ भी उसने नहीं बिगाड़ा ?

यदि तेरी अभीष्ट-सिद्धि के लिये तेरे हज़ारों पुत्र-तुल्य प्रजा जनों को प्राण देने पड़ते हों, तो उस समय क्या तू यह नहीं कहता कि यह काम तो होना ही चाहिए ? उस समय निश्चय ही तू भूल जाता है कि जिस परमात्मा ने तुझे पैदा किया है, उसी ने उन्हें भी, और उनका भी ख़ून उतना ही मूल्यवान् है, जितना तेरा।

क्या तेरा यह कहना है कि अन्याय किए विना न्याय-प्रदान नहीं किया जा सकता ? यदि हाँ, तो निश्चय रख कि अपने इन शब्दों के द्वारा तू स्वयं अपनी ही निंदा करता है।

यदि तू झूठी आशाएँ दिलाकर दोषी की आत्मा को फुसलाता है, जिसमें वह अपना दोष स्वीकार कर ले, तो क्या

तू उसके प्रति दोषी नहीं है ? इसलिये कि वह तुझे सज़ा नहीं दे सकता, क्या तेरा दोष उससे कम है ?

ज बतू बुरा करने के संदेह-मात्र पर किसी को कष्ट पहुँचाने का हुक्म देता है, तब क्या तू यह ख़याल कर सकता है कि निर्दोष भी मेरे हाथों पीड़ित हो सकते हैं ?

क्या इस बात से तेरे उद्देश्य की पूर्ति होती है ? क्या उसके स्वीकार कर लेने से तेरी आत्मा को संतोष हो जाता है ? जो बातें हुई नहीं हैं, उन्हें यंत्रणाएँ उससे ज़बरदस्ती उतनी ही आसानी के साथ कहलवा लेंगी, जितनी कि वह बात जो हुई है। मनोव्यथा स्वयं निरपराधता की मूर्ति को भी दोषी बना देती है।

यदि फाँसी के योग्य कार्य-कारण हो, तो तू उसे फाँसी भी दे सकता है; पर तू तो फाँसी से भी बढ़कर बुरा काम करता है। यदि वह अपराधी हो, तो तू उसका क़ुसूर साबित कर सकता है; पर तू तो उसके निरपराध होते हुए भी उसका नाश कर डालता है।

ऐ सत्य से आँखें मूँदनेवाले, अधूरी बुद्धि और ज्ञान रखनेवाले समझदार ! जब तेरा न्यायाधीश तुझे इसके लिये कारण बताने की आज्ञा करेगा, तब तू यह चाहेगा कि चाहे दस हज़ार अपराधी भले ही छूटकर चले जायँ, पर एक भी निरपराध मनुष्य मेरे ख़िलाफ़ न खड़ा हो।

जब तू न्याय की रक्षा करने में पूरी तरह समर्थ नहीं है,

तब तुझे सत्य का ज्ञान किस तरह होगा ? तू सत्य-सिंहासन के सोपान पर कैसे चढ़ सकेगा ?

जिस प्रकार सूर्य के तेज से उल्लू की आँखें अंधी हो जाती हैं, उसी प्रकार सत्य के मुख-मंडल की कांति तेरे सामने पहुँचते ही तुझे चका-चौंध कर देगी।

यदि तू उसके सिंहासन तक पहुँचना चाहे, तो पहले उसके पादासन को नमन कर; यदि तू उसके ज्ञान को प्राप्त करना चाहे, तो पहले स्वयं अपने अज्ञान को पहचान।

सत्य का मूल्य रत्नों से भी अधिक है, इसलिये उसकी खोज बड़ी चिंता के साथ कर। ये पुखराज, इंद्रनील और लाल तो उसके पैरों की धूल के समान हैं। इसलिये एक पुरुषार्थी की तरह उसके पाने का उद्योग कर।

उस तक पहुँचने का मार्ग है परिश्रम। ध्यान उसका नाविक है, जो तुझे उसके बंदरगाह तक निश्चय ले जायगा। परंतु रास्ते में उकता न जाना—थक न जाना; क्योंकि जब तू उसके यहाँ पहुँच जायगा, तब तेरे सब मार्ग के कष्ट आनंद में बदल जायँगे।

देख, अपने मन में यह न सोच कि सत्य से घृणा उत्पन्न होती है, इसलिये मैं अपने को सत्य से दूर ही रक्खूगा; और छल-कपट से मित्रता बढ़ती है, इसलिये मैं उसको ग्रहण करूँगा। क्या चापलूसी के द्वारा प्राप्त मित्रों की अपेक्षा सत्य के द्वारा बनाए गए शत्रु अच्छे नहीं हैं ?

मनुष्य स्वभावतः सत्य को चाहता है, तो भी जब वह उसके सामने आ जाता है, तब पहचान नहीं पाता। यदि सत्य स्वयं ज़बरदस्ती उसके पास जाय, तो क्या वह उस पर बिगड़ नहीं बैठता ?

परंतु इसमें सत्य का दोष नहीं। वह तो मनोरम है। हाँ, मनुष्य की दुर्बलता उसके तेज को सहन नहीं कर सकती।

क्या तू अपनी अपूर्णता को और भी स्पष्ट रूप में देखना चाहता है ? तो अपने अंतःकरण को उस समय जाँच, जब तू पूजा-अर्चा के लिये बैठा हो। धर्म का उद्देश्य क्या है ? केवल यही कि मनुष्य को अपनी दुर्बलता का ज्ञान करा दे, कमज़ोरियों की याद दिला दे, और यह दिखला दे कि सिर्फ़ स्वर्ग से ही तुझे अच्छी बातों की आशा करनी चाहिए।

क्या धर्म तुझे नहीं याद दिलाता कि तू पार्थिव है, मिट्टी का पुतला है, और राख में मिल जाता है ? पश्चात्ताप को देख, क्या वह दुर्बलता की बुनियाद पर नहीं खड़ा है ?

तू किसी को क़सम देता है, और ख़ुद भी शपथ करता है कि मैं किसी को धोखा न दूँगा। यह तेरे और उसके, दोनो के लिये शर्म की बात है। तू न्यायशील बन, जिससे अनुताप करना भूल जाय। ईमानदार हो, जिससे तुझे क़समें खाने की ज़रूरत ही न रहे।

मूर्खपन जितना कम हो, उतना ही अच्छा। इसलिये तू यह न सोच कि मैं थोड़ी-थोड़ी मूर्खता न करूँगा।

जो अपने निजी के अपराधों की कहानी धैर्य के साथ सुनता है, वही दूसरे को उसके अपराध पर साहस के साथ झिड़क सकता है।

जो किसी बात को सकारण अस्वीकार करता है, वह अपनी त्रुटि को भी धीरज के साथ सहन करता है।

यदि कोई तुझ पर व्यर्थ ही संशय करे, तो तू बेधड़क होकर उसका उत्तर दे। संशय अपराधी के सिवा दूसरे किसको डरा सकता है ?

कोमल-हृदय मनुष्य तो अनुनय-विनय से अपने आग्रह को कम कर देता है, परंतु घमंडी आदमी नम्र वचनों से और भी अधिक दुराग्रही हो जाता है। तेरी अपूर्णता तुझसे कहती है कि तू सबकी बात सुन। यदि तू न्यायी होना चाहता है, तो तुझे चाहिए कि जो कुछ सुने, उसे विकार-हीन होकर स्वीकार कर।

पाँचवाँ अध्याय

विपत्ति

ऐ मनुष्य, सज्जनता में तू दुर्बल और अपूर्ण है; आनंद में तू अशक्त और चंचल है। पर हाँ, एक ऐसी वस्तु है, जिसमें तू बड़ा प्रबल, चिरस्थायी और अचल है। उसका नाम है विपत्ति।

यह तेरे जीवन का विशेष गुण है, तेरी प्रकृति का विशेष अधिकार है। तेरे हृदय में ही इसका निवास है। देख तो, सिवा तेरे मनोविकारों के उसका उद्गम और कहाँ है ?

जिसने तेरे अंतर में मनोविकार उत्पन्न किए हैं, उसने तुझे उनको अपने वश में करने के लिये तर्क-शक्ति भी दी है। उसे काम में ला। वे तेरे वशवर्ती हो जायँगे।

संसार में तेरा प्रवेश क्या शर्म की बात नहीं है ? क्या मृत्यु गौरव-युक्त नहीं ? देख, लोग मृत्यु के शस्त्रास्त्रों को सुवर्ण और रत्न से सुसज्जित करते और उन्हें पहनते हैं।

जो शख़्स किसी को जन्म देता है, उसे अपना मुँह छिपाना पड़ता है; परंतु जो सहस्रों का संहार करता है, वह जगह-जगह आदर पाता है।

पर यह भूल है। सत्य के स्वभाव को रूढ़ियाँ नहीं बदल सकतीं; और न, एक आदमी की राय न्याय को उन्मूलित कर सकती है। जो बात गौरव के योग्य है, वह लज्जाजनक समझी जाती है; और जो लज्जायुक्त है, वह गौरव-पूर्ण ! गौरव और लज्जा भूल से एक दूसरे की जगह रख दी गई हैं !!

मनुष्य के जन्म का मार्ग केवल एक है, परंतु विनाश के रास्ते हज़ारों।

जो दूसरे प्राणियों को जन्म देता है, उसकी मन-प्रशंसा कहीं नहीं होती; परंतु हिंसा-कांड का पुरस्कार मिलता है विजय और साम्राज्य।

फिर भी जिसने प्रचुर संतान को जन्म दिया है, उसे मानो उतने ही मंगल-आशीर्वाद मिले हैं, पर जिसने दूसरों के प्राण हरे हैं, उसे अपने जीवन का भी उपभोग नसीब न होगा।

जंगली मनुष्य पुत्र-जन्म की ख़बर पाकर दुखी होता है। वह अपने बाप की मृत्यु पर आशीर्वाद की वृष्टि करता है। इससे क्या वह अपने को राक्षस नहीं कहलवाता ?

मनुष्य के भाग्य में पहले ही बहुत-सी बुराइयाँ बदी हैं; परंतु वह उन पर दुखी होकर उनकी मात्रा और भी बढ़ा लेता है।

मनुष्यों के लिये सबसे बड़ी बुराई है दुःख। दुःखों को लेकर तो तू जन्मा ही है। अपने उलटे-सीधे कामों से उनकी मात्रा अब अधिक न कर।

दुःख तेरे लिये स्वाभाविक है, हमेशा तेरे आसपास मँड-लाया करता है; पर सुख एक मुसाफ़िर की तरह है—कभी-कभी तुझसे मिलता है। इसलिये अपने तर्क का उपयोग अच्छी तरह कर, जिससे तेरा दुःख पीछे छूट जाय। दूरदर्शी बन, जिसमें सुख चिरकाल तक तेरे पास निवास करे।

दुःख की क्षमता तेरे शरीर का प्रत्येक भाग रखता है; पर आनंद के मार्ग तंग और थोड़े हैं।

सुख तो सिर्फ़ एक ही राह से आ सकता है, परंतु दुःख हज़ारों की संख्या में और हज़ारों ओर से एक ही समय आ घेरते हैं।

तिनके की ज्वाला सुलगते ही बुझ जाती है। उसी तरह हर्ष की चमक क्षण में चली जाती है। फिर पता भी नहीं चलता कि उसका क्या हुआ ?

दुःख सदैव हुआ करता है; पर सुख कभी-कभी आता है। कष्ट अपनेआप आता है; पर आनंद को मोल लेना पड़ता है। दुःख तो अनमिला होता है; परंतु हर्ष में कटुता का अभाव नहीं रहता।

जब आदमी बहुत तंदुरुस्त होता है, तब उसकी तंदुरुस्ती उतनी स्पष्ट नहीं मालूम होती, जितनी कि थोड़ी-सी भी बीमारी। वैसे ही अत्यानंद हमारे हृदय में उतना गहरा नहीं पैठता, जितना कि ज़रा-सा भी दुःख।

हमें कष्टों से प्रेम हो गया है; हम आनंद से प्रायः दूर भागते हैं। इसलिये जब हमें उसकी गरज़ होती है, तब क्या दूनी-चौगुनी क़ीमत नहीं देनी पड़ती ?

चिंतन-मनन करना मनुष्य का कार्य है; अपनी स्थिति का ध्यान या ज्ञान रखना उसका पहला कर्तव्य है। परतु हर्ष-काल में कौन अपनी दशा का ध्यान रखता है ? तब क्या यह ईश्वर की दया नहीं है, जो उसने हमारे नसीब में दुःख लिख दिया है ?

मनुष्य आनेवाले संकट की कल्पना पहले ही से कर लेता है। जब वह चला जाता है, तब उसकी याद किया करता है। पर वह यह नहीं समझता कि दुःख की कल्पना प्रत्यक्ष दुःख

की अपेक्षा अधिक कष्टदायिनी है। इसलिये जब तक दुःख तेरे पास न आ जाय, तू उसका विचार ही न कर। इससे तू अत्यधिक दुःख से बचा रहेगा।

जो आवश्यकता के पहले ही रोता है, उसे आवश्यकता से अधिक रोना पड़ता है। यह क्यों? इसलिये कि उसे रोने के साथ मुहब्बत है।

बारहसिंगा तब तक नहीं चिल्लाता, जबतक शिकारी उस पर निशाना नहीं ताकता; और न बीवर* की आँखों से तब तक आँसू ही गिरते हैं, जब तक शिकारी कुत्ते उस पर झपटते नहीं। मनुष्य मृत्यु की आशंका कर उसकी बाट जोहता रहता है; क्योंकि भय स्वय प्रत्यक्ष घटना से भी अधिक दुःखदायी होता है।

अपने कार्यों का हिसाब देने के लिये सदा तैयार रह। सबसे श्रेष्ठ मृत्यु वही है, जिसका ध्यान पहले से प्रायः न किया गया हो।

छठा अध्याय

निर्णय

मनुष्य को परमात्मा ने जो सबसे बड़ा प्रसाद दिया है, वह है निर्णय-शक्ति और संकल्प-शक्ति। वही मनुष्य सुखी है, जो इनका दुरुपयोग नहीं करता।

---

* एक जल-थलचर प्राणी।

पहाड़ से नीचे गिरनेवाले झरनों का प्रवाह अपने में पड़नेवाली प्रत्येक वस्तु को जिस प्रकार बरबाद कर देता है, उसी प्रकार लोकमत उस मनुष्य के तर्क को घबराहट में डाल देता है, जो यह देखे विना कि इस बात का मूल क्या है, उसके आगे सिर झुका देता है।

इस बात पर ध्यान रख कि जिसे तू सत्य समझकर ग्रहण करता है, कहीं वह उसका आभास-मात्र न हो; क्योंकि जिस वस्तु को तू निर्णायक समझता है, वह अक्सर धोखे की टट्टी होती है। इसलिये दृढ़ता धारण कर, स्थिर-चित्त हो, और अपना निश्चय खुद आप कर, जिससे तुझे स्वयं अपनी ही दुर्बलता का उत्तर देना पड़े।

यह न कह कि परिणाम से कार्य का औचित्य सिद्ध होता है। याद रख, मनुष्य दैवयोग की पहुँच के परे नहीं है।

किसी का निर्णय यदि तेरे निर्णय से न मिलता हो, तो सके लिये उसकी निंदा न कर। दोनो के निर्णयों में ग़लती हो सकती है।

जब तू किसी मनुष्य को उसकी उपाधियों के कारण आदर की दृष्टि से देखता है, और किसी अपरिचित मनुष्य का तिरस्कार इसलिये करता है कि वह उन उपाधियों से वंचित है, तो क्या इस दशा में तू ऊँट का अनुमान उसकी नकेल से नहीं करता ?

जब तू अपने शत्रु का वध करता है, तब यह न समझ कि

तूने उससे बदला लिया है। तू तो उसे ऐसी जगह पहुँचा देता है, जहाँ तेरी पहुँच ही नहीं हो सकती। तू उसे शांति दिला देता है। उसे दुःख देने के लिये जो साधन तेरे पास थे, वे यों ही रह जाते हैं।

क्या तेरी माता व्यभिचारिणी थी, और क्या तुझे यह बात सुनकर दुःख होता है? क्या तेरे हृदय की रानी—तेरी पत्नी—चंचल है, और क्या उसकी निंदा सुनकर तुझे व्यथा होती है? पर इसके कारण जो लोग तुझसे घृणा करते हैं, वे मानो स्वयं अपना ही तिरस्कार करते हैं। क्या दूसरे के दुराचारों के लिये तू जवाबदेह है?

किसी रत्न की केवल इसलिये अवहेलना न कर कि वह तेरे पास है; न किसी वस्तु को इसलिये विशेष मूल्यवान् समझ कि वह दूसरे की है। वस्तु का मूल्य तो सुयोग्य मनुष्य के पास रहने से बढ़ता है।

इसलिये कि तेरी धर्मपत्नी तेरी वशवर्तिनी है, तू उसका आदर कम न कर। ऐसे शख्स से दूर रह, जो यह कहता हो—यदि तू कम प्रेम करना चाहता हो, तो इससे शादी कर। भला बता तो, वह कौन-सी वस्तु है, जिसके कारण उसने अपना हृदय तुझे अर्पण किया है? वह है केवल तेरे सद्गुणों के प्रति उसका विश्वास। तो क्या तुझे इसीलिये उससे कम प्रेम करना चाहिए कि तू उसका अधिक कृतज्ञ है?

यदि तूने वाजिब तौर पर उसका प्रेम प्राप्त किया है,

तो जब तक वह तेरे पास है, तब तक तू चाहे भले ही उसकी उपेक्षा करे, पर उसका वियोग तेरी आत्मा को व्यथित किए विना न रहेगा।

यदि किसी को केवल इसलिये भाग्यवान् समझता है कि उसे वैसी पत्नी प्राप्त है, तो चाहे वह तुझसे अधिक समझदार न हो, पर कम-से-कम अधिक सुखी अवश्य है।

अपने मित्र की हानि का अंदाज़ उसके आँसुओं से न कर। अत्यधिक विषाद तो बाहरी चिह्नों के द्वारा प्रकट ही नहीं हो सकता।

यदि कोई काम बड़ी धूमधाम और समारोह के साथ किया जाय, तो उसको महत्त्व की दृष्टि से न देख; क्योंकि ऊँची आत्मा तो वह है, जो कार्य तो बड़े-से-बड़ा करती है, पर उसके करते समय दिखावे के मोह में नहीं फँसती।

कीर्ति से उसके कान को कुतूहल होता है, जो उसे सुनता है; परंतु शांति तो स्वयं उसी मनुष्य के हृदय को आह्लाद देती है, जिसमें उसका निवास होता है।

दूसरे के सत्कार्यों पर भावों का आरोप न कर; क्योंकि तू उसके हृदय को नहीं परख सकता। हाँ, ऐसा करने से संसार यह जान जायगा कि तेरा हृदय ईर्ष्या से भरा हुआ है।

धूर्त होना मूर्ख होने की अपेक्षा अधिक बुरा नहीं; परंतु ईमानदार बनना उतना ही आसान है, जितना कि स्वयं ईमानदार दिखाई देना।

हानि का बदला लेने की अपेक्षा नेकी का उपकार मानने के लिये अधिक तैयार रह। इससे तुझे हानि की अपेक्षा लाभ अधिक होगा।

घृणा की अपेक्षा प्रेम करने में अधिक तत्पर रह। इससे लोग तुझसे घृणा की अपेक्षा प्रेम अधिक करेंगे।

स्तुति करने की उत्सुकता रख; पर निंदा करने में आतुरता न कर। इससे तेरे सद्गुणों की प्रशंसा होगी, और शत्रुओं की आँखें तेरी त्रुटियों को न देख सकेंगी।

अच्छा काम इसीलिये कर कि वह अच्छा है, इसलिये नहीं कि लोग उसे पसंद करते हैं। बुरी बात से बचे, तो इसलिये कि वह बुरी है, इसलिये नहीं कि लोग उसे बुरा कहते हैं। ईमानदारी के ही प्रेम के कारण ईमानदार हो, जिससे तू भीतर-बाहर सब कहीं ईमानदार हो जाय। जो बिना वसूल के इमानदार बनता है, वह कहीं का नहीं रहता।

नादान से प्रशंसा पाने की अपेक्षा समझदार से निंदा सुनने की इच्छा रख। वह तेरे दोष और त्रुटियाँ इसी ख़याल से दिखाता है कि तू उन्हें दूर कर सकता है। पर जब नादान तेरी तारीफ़ करता है, तब वह तुझे अपने ही-जैसा समझता है।

जिस पद के योग्य न हो, उसे स्वीकार न कर। ऐसा करने से जो आदमी उसके योग्य होगा, उसकी नज़र में गिर जायगा।

जिस बात को तू न जानता हो, उसके विषय में दूसरे को

उपदेश न दे; क्योंकि जब वह इस बात को जानेगा, तेरा उपहास करेगा।

जिसने हानि पहुँचाई है, उससे मित्रता की आशा न कर; क्योंकि जिसके साथ अन्याय किया गया है, वह चाहे भले ही एक बार माफ़ कर दे, पर जिसने अन्याय किया है, वह कभी तेरे साथ अच्छा बरताव नहीं कर सकता।

जिसे अपना मित्र बनाना चाहता हो, उसे अपने उपकारों में बाँध न ले। याद रख, उन उपकारों की स्मृति ही उसे तुझसे दूर हटावेगी। थोड़ा उपकार तो बनाने में सहायक होता है, पर अत्यधिक उपकार से शत्रुता पैदा हो सकती है।

फिर भी अकृतघ्नता मनुष्य के लिये स्वाभाविक नहीं है; और न उसका कोप ऐसा है, जो शांत न हो सके। जिस उपकार से वह उऋण नहीं हो सकता, उसकी याद दिलाने से उसके चित्त को अनुताप होता है। उस मनुष्य का साबक़ा पड़ने पर, जिसे उसने हानि पहुँचाई है, वह लज्जित हो जाता है।

न तो किसी अपरिचित जन के लाभ पर खेद कर, और न अपने शत्रु की विपत्ति पर हर्ष। क्या तू यह चाहता है कि दूसरे लोग भी मौक़ा पड़ने पर तेरे साथ ऐसा ही व्यवहार करें?

क्या तू यह चाहता है कि मनुष्य-मात्र तेरा कल्याण-चिंतन करें? तो तू अपनी उपकार-शीलता को मनुष्य-मात्र तक फैला दे। यदि तू इस प्रकार उनके सद्भाव को नहीं प्राप्त कर सकता,

तो इसका दूसरा कोई साधन नहीं; और यदि ऐसा प्रयत्न करते हुए भी उसे न पा सके, तो हर्ज नहीं। तुझे उसके अधिकारी होने का तो सौभाग्य प्राप्त हो ही जायगा।

सातवाँ अध्याय

अहंकार

घमंड और नीचता, दोनों बातें जुदी-जुदी—एक दूसरे के साथ न रहनेवाली—मालूम होती हैं; परंतु मनुष्य में परस्पर विरुद्ध बातों का संयोग पाया जाता है। वह संसार के तमाम प्राणियों से अधिक विपन्न, साथ ही सबसे अधिक घमंडी भी है।

घमंड तर्क के मार्ग में एक बला है। वह भूलों का पालक है। फिर भी वह मनुष्य के पास तर्क के साथ मिल-जुलकर रहता है।

दुनिया में ऐसा कौन है, जो अपने को ऊँचा, या दूसरे को नीच नहीं समझता ?

खुद हमारा स्रष्टा—ईश्वर—भी हमारे घमंड की चपेट से नहीं बचता। बताइए, हम आपस में एक दूसरे से किस तरह बच सकते हैं ?

अंध-विश्वास का मूल क्या है ? अंध-भक्ति कहाँ से उत्पन्न होती है ? जो बात हमारी पहुँच के बाहर है, उसके विषय में तर्क न करने के अपने भ्रम से, और जो अगम्य है, उसका पता लगाने के प्रयत्न से।

एक तो हमारी बुद्धि की शक्ति मर्यादित है, दूसरे, जो कुछ थोड़ी-बहुत बुद्धि हमें प्राप्त है, उसका भी उपयोग हम नहीं करते। हम ईश्वर की महत्ता का विचार करते समय अपनी बुद्धि को, और परमात्मा का ध्यान करते समय अपने विचारों तथा कल्पनाओं को ऊँची उड़ान का अवसर नहीं देते।

जो इस लोक के राजा के खिलाफ़ चूँ तक करने से डरता है, वह ईश्वर के विधान के नुक़्स बताने में ज़रा भी नहीं हिचकिचाता—नहीं डरता। वह उसके ऐश्वर्य और महत्ता को भूलकर उसके निर्णय पर अपनी बुद्धि से ऊटपटाँग विचार करता है।

जो युवराज तक का नाम बिना उसके अल्क़ाब—ख़िताब के लेने का साहस नहीं कर सकता, वह उस जगत्-पिता परमात्मा को झूठी गवाही के लिये बुलाने में लज्जित नहीं होता।

जो एक मामूली न्यायाधीश के दिए सज़ा के हुक्म को चुपचाप सुन लेता है, वह भी उस ईश्वर के दरबार में दलील करता है; मित्रता-ख़ुशामद कर उसको राज़ी करने की, तरह-तरह के वादे कर उसको फुसलाने की शर्तें पेश कर उसे समझाने की कोशिश करता है। यदि इतने पर भी उसकी प्रार्थना स्वीकृत न हुई, तो बड़े हौसले के साथ उसके फैसले पर भला-बुरा कहता फिरता है।

ऐ मनुष्य, तुझे इन पापों की सज़ा अब तक क्यों नहीं मिली? इसलिये कि अभी उसका समय नहीं आया है।

उन आदमियों का अनुकरण न कर, जो सृष्टिकर्ता से न्याय कराने के लिये उसकी सृष्टि से झगड़ा करते हैं; और न इसलिये कि वह तुझे दंड देता है, उसका भक्ति-भाव छोड़। यदि ऐसा करेगा, तो यह तेरा ही पागलपन कहा जायगा। तेरे बुरे कामों का फल अकेले तुझको भुगतना होगा।

जब तक मनुष्य ईश्वर के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने की परवा नहीं करता, तब तक वह अपने को उसका प्रीति-पात्र क्यों कहता है? ऐसे दृढ़ विश्वास के साथ ऐसा जीवन किस तरह निभ सकता है?

मनुष्य इस ब्रह्मांड में, सचमुच एक कण के बराबर है। तब भी वह समझता है कि यह स्वर्ग और मृत्युलोक मेरे लिये बनाए गए हैं। वह मानता है कि इस सारी सृष्टि का खास संबंध मेरे हित से है।

वृक्षों, मकानों और क्षितिज की आकृतियों को जल के पृष्ठ-भाग पर काँपते हुए देखकर मूर्ख मनुष्य समझता है कि ये मुझे आनंदित करने के लिये नाच रही हैं। उसी तरह वह तब, जब प्रकृति अपना निश्चित कार्य करती है, यह मानता है कि उसकी ये सारी हरकतें मेरी आँखों को सुख देने के लिये हो रही हैं।

जब वह धूप और गरमी पाने के लिये सूर्य-किरणों की उपासना करता है, तब कल्पना करता है कि यह मेरे ही उपयोग के लिये बनाया गया है; जब वह चंद्र को

निशीथ-पथ में भ्रमण करते हुए देखता है; तब मानता है कि यह मुझे आनंद पहुँचाने के लिये उत्पन्न किया गया है।

अरे; अपने अभिमान को न समझनेवाले मूर्ख! नम्र हो। विश्व की गति जो नियमित रूप से अपना कार्य करती है, उसका कारण तू नहीं है। ग्रीष्म और शरद् का यह आवागमन तेरे लिये नहीं बनाया गया है।

यदि सारे मानव-वंश के अस्तित्व का लोप हो जाय, तो भी इस संसार की गति-विधि में कुछ परिवर्तन न होगा। तू उन असंख्य प्राणियों में से केवल एक प्राणी है; जिन्हें संसार में यह कृपा-प्रसाद मिला है।

यह न समझ कि मैं स्वर्ग से भी ऊँचा हूँ। देख, गोलोक-वासी तुझसे भी ऊपर हैं। अपने पृथ्वी के सहवासियों को गिरी निगाह से न देख। क्या उसी ईश्वर के हाथों उनकी रचना नहीं हुई?

यदि भगवान् की दया से सुखी है, तो क्या अपने सुखोप-भोग के लिये उस परमात्मा की सृष्टि के दूसरे प्राणियों को दुःख देने का साहस कर सकता है? याद रख, कहीं लेने के देने न पड़ें!

क्या ये सब तेरे साथ-साथ उसी विश्वात्मा की सेवा नहीं करते? क्या उसने हरएक के लिये नियम निश्चित नहीं कर दिए? क्या उनकी रक्षा की चिंता उसे नहीं है, और क्या तू उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने की धृष्टता कर सकता है?

अपने विचार या निर्णय को दुनिया के विचार या निर्णय से बढ़कर न मान। जो बात तेरी धारणा के प्रतिकूल हो, उसे असत्य न मान, और न उसकी निंदा ही कर। दूसरों के लिये निश्चय करने का अधिकार तुझे किसने दिया है? दुनिया से चुनने और पसंद करने का अधिकार किसने छीन लिया है?

ऐसी कितनी बातें त्याज्य मानी जा चुकी हैं, जो अब सत्य समझी जाती हैं? ऐसी कितनी बातें, जो आज सत्य समझी जाती हैं, आगे चलकर घृणित मानी जाने लगेंगी? तब भला तू किस बात पर क़ायम रह सकता है?

जिस बात को तू अच्छा समझता हो, उसे कर। इससे तुझे सुख प्राप्त होगा। इस संसार में, बुद्धि की अपेक्षा, सद्गुण प्राप्त करना तेरा प्रधान कर्तव्य है।

जिन बातों को हम समझ नहीं पाते, उनमें क्या सत्य और असत्य का स्वरूप एक-सा नहीं होता? ऐसी दशा में हमारे विश्वास के सिवा उसका निश्चय और कौन कर सकता है?

जो बात हमारी धारणा से परे है, उस पर हम आसानी से विश्वास कर लेते हैं, या उसपर विश्वास करने का ढकोसला रचते हैं, जिससे लोग यह समझें कि हम उस बात को जानते हैं। क्या यह मूर्खता और वृथाभिमान नहीं है?

ऐसा कौन है, जो बड़े साहस के साथ 'हाँ' कह सकता है? कौन है, जो अपनी ही बात को सब कुछ समझता है? केवल वृथाभिमानी, केवल महा घमंडी।

प्रत्येक मनुष्य जब एक राय बनाता है, तो यह चाहता है कि उस पर क़ायम रहे; परंतु जो जितना अधिक अहंकारी होता है, उतना ही अधिक ऐसा करता है। इसमें वह ख़ुद अपनी आत्मा को धोखा देने से ही संतुष्ट नहीं होता, बल्कि दूसरों को भी उस पर विश्वास रखने के लिये मजबूर करता है।

यह न कह कि सत्य की स्थापना काल या अवस्था के द्वारा नहीं होती, या उसके माननेवाले जन-समाज में उसका पूरा निश्चय होता है।

एक मनुष्य की बात या सिद्धांत उतना ही बल रखता है, जितना दूसरे मनुष्य की बात या सिद्धांत; पर दोनों का भेद या तारतम्य हमें तर्क के ही द्वारा जान पड़ता है।

मनुष्य के दुर्विकार

जिनसे स्वयं उसे तथा दूसरों को दुःख होता है

पहला अध्याय

लोभ

लक्ष्मी या संपत्ति इस योग्य नहीं कि उसकी ओर अत्यधिक ध्यान दिया जाय। अतएव उसकी प्राप्ति के लिये सरगर्मी से चिंता करना बेजा है।

अच्छी वस्तु के प्राप्त करने की इच्छा और उसके अपने पास रहने से होनेवाला सुख अपनी-अपनी रुचि पर—भाव पर—अवलंबित है। उस सुख और आनंद को गंदी चीज़ों से न प्राप्त कर। स्वयं उन चीज़ों की महत्ता की जाँच कर। इससे तू लोभ का शिकार न होगा।

संपत्ति की अमित अभिलाषा करना आत्मा को विष पिलाना है। उसमें जो कुछ अच्छी बातें हैं, उन्हें वह नष्ट-भ्रष्ट कर देती है। इसने जड़ जमाई नहीं कि सारे सद्गुण—ईमानदारी, स्वाभाविक स्नेह आदि—उससे डरकर भागे नहीं।

लोभी मनुष्य धन के लिये अपने बच्चों को बेच डालता है। माता-पिता चाहे मर भले ही जाँय, पर उसकी तिजोरी का ताला नहीं खुलता—नहीं, उसके मुक़ाबले में वह स्वयं अपने को

भी कोई चीज़ नहीं समझता। इस प्रकार सुख की खोज में वह अपने को दुखी बनाता है।

जो मनुष्य सपत्ति की खोज में, इस आशा से कि उसका उपभोग करने से मैं सुखी होऊँगा, अपने चित्त की शांति को खो देता है, वह उस मनुष्य की तरह है, जो अपने घर को सुसज्जित करने की इच्छा से उसे बेचकर सजावट का सामान ख़रीदता है।

जहाँ लोभ का राज्य है, वहाँ समझ ले कि आत्मा दरिद्र है। जो संपत्ति को ही मनुष्य की भलाई का साधन नहीं मानता, वह उसकी तलाश में दूसरी समस्त अच्छी बातों से हाथ नहीं धो बैठता।

जो दरिद्रता को अपनी प्रवृत्ति की सबसे बड़ी बुराई नहीं समझता, और उससे नहीं डरता, वह अपने को उससे बचाने के लिये दूसरी तमाम बुराइयों को मोल नहीं लेता।

ऐ मूर्ख, क्या सद्गुण संपत्ति से अधिक क़ीमती नहीं है? क्या अपराध दरिद्रता की अपेक्षा अधिक अधम नहीं है? प्रत्येक मनुष्य के पास उसकी आवश्यकता के योग्य संपत्ति है। उसी से संतुष्ट रह। तेरा सुख उस मनुष्य के दुःखों को देखकर हँसेगा, जो अधिक धन-संचय कर रखता है।

प्रकृति ने स्वर्ण को पृथ्वी के पेट में छिपा रक्खा है; क्योंकि वह देखने-योग्य नहीं है। चाँदी को उसने ऐसी जगह रक्खा है, जहाँ तू उसे पैरों-तले रौंदता है। ऐसा करने में

क्या उसका अभिप्राय यह नहीं है कि तुझे जता दे कि न तो सुवर्ण तेरी चाह के योग्य है, और न चाँदी तेरे नज़र डालने-योग्य।

लोभ करोड़ों हतभाग्यों को मिट्टी में मिला देता है। लोभी मनुष्य अपने संग-दिल मालिकों के लिये ऐसी वस्तुएँ पैदा करते हैं, जो उन्हें उल्टे दुःख देती हैं—अपने इन सेवकों से भी अधिक विपन्न बनाती हैं।

पृथ्वी ने अपने पेट में जहाँ कोष को—धन को—स्थान दिया है, समझ ले, वह स्थान अच्छी वस्तुओं के लिये ऊसर है। पृथ्वी के गर्भ में जहाँ सुवर्ण रहता है वहाँ हरियाली नहीं जमती।

जिस प्रकार घोड़े ऐसे स्थान पर अपने लिये घास, और खच्चर दाना नहीं पाते, जिस प्रकार पर्वतों के पार्श्व में शस्य-संपन्न खेत हँसते हुए नहीं दिखाई देते, न आम्र-वृक्ष फल देते हैं और न द्राक्षा-लता में ही गुच्छे लटकते हैं, उसी प्रकार उस मनुष्य के हृदय में, जो अपने संगृहीत धन के ही ध्यान में मस्त रहता है, भलाई बसेरा नहीं करती।

संपत्ति समझदार मनुष्य की सेविका है, परंतु मूर्ख के लिये वह ज़ालिम है।

लोभी मनुष्य धन की सेवा करता है, धन उसकी सेवा नहीं करता। जैसे बीमार आदमी बुख़ार को नहीं छोड़ता, उसी प्रकार वह धन को सदा अपने पास रखता है। धन

उसे जलाता है, तरह-तरह के कष्ट देता है, और मृत्यु तक उसका पिंड नहीं छोड़ता।

दौलत ने क्या लाखों आदमियों के सद्गुणों को मिट्टी में नहीं मिला दिया? क्या इसने आज तक किसी की भलमनसाहत में वृद्धि की है?

क्या यह बुरे-से-बुरे आदमियों के पास बहुतायत से नहीं होती? फिर किसलिये उसकी प्राप्ति के द्वारा प्रसिद्ध होने की इच्छा करता है?

क्या वे लोग, जिनके पास यह कम-से-कम है, समझदार नहीं गिने गए? क्या समझदारी ही सुख नहीं है?

क्या तेरी श्रेणी के बुरे-से-बुरे आदमियों के पास यह अधिक-से-अधिक तादाद में नहीं है? क्या उनका अंत दुःखमय नहीं हुआ?

दरिद्रता को बहुत-सी बातों की चाह रहती है; परंतु लोभ उन सब बातों को दुतकार देता है।

लोभी किसी के साथ नेकी नहीं कर सकता। वह दूसरों के साथ उतना निर्दय नहीं होता, जितना कि स्वयं अपने साथ।

अर्थ की प्राप्ति के समय परिश्रमी बन, और उसके विनियोग के समय उदार। मनुष्य जितना सुखी दूसरे को सुखप्रदान करते समय होता है, उतना और कभी नहीं होता।

दूसरा अध्याय

फ़ैयाज़ी

यदि धन को संग्रह करने से बढ़कर कोई दूसरी बुराई है, तो वह है उसको बुरे कामों मे ख़र्च करना।

जो मनुष्य आवश्यकता से अधिक धन ख़र्च करता है—उसे मनमाना उड़ाता है—वह ग़रीब मनुष्य की ईश्वर-दत्त वस्तु के अधिकर का अपहरण करता है।

जो अपने संगृहीत धन को उड़ा देता है, वह मानो नेकी के साधन को अपने पास रखना नहीं चाहता। वह स्वयं मानो अपने को सत्कार्य करने से रोकता है, जिसका पारितोषिक उसके अधिकार में है, और जिसका अंत उसके निजी सुख के अतिरिक्त और कुछ नहीं।

संपत्ति के अभाव में आराम पाना उतना कठिन नहीं है, जितना संपत्तिशाली होकर सुखी रहना। मनुष्य धनाढ्यता की अपेक्षा दरिद्रता में अपने मन पर ज़्यादा आसानी से अधिकार कर लेता है।

दरिद्रता में यदि सिर्फ़ एक ही गुण—धैर्य हो, तो वह समर्थ बनाने योग्य है। धनवान् के पास यदि दानशीलता, संयम, दूरदर्शिता तथा ऐसी ही और दूसरी बातें न हों, तो वह दोषों के पंजे में फँस जाता है।

निर्धन मनुष्य को सिर्फ़ अपनी ही प्राप्त स्थिति का सुधार

करना है; परंतु धनवान् के सिर तो हज़ारों आदमियों के कल्याण की जवाबदेही है।

जो अपने संचित धन को सोच-समझकर ख़र्च करता है, वह अपने दुःखों को दूर करता है; पर जो उसे बढ़ाकर जमा करता है, वह दुःखों का संग्रह करता है।

यदि कोई अपरिचित मनुष्य कुछ माँग बैठे, तो उससे इनकार न कर। जिस वस्तु को तू स्वयं चाहता है, उसके लिये अपने एक बंधु को नाहीं न कर।

यह जान कि लाखों की संपत्ति पास रहने, परंतु उसका उपयोग न जानने की अपेक्षा जो कुछ तू दे चुका है, उसके कारण ख़ाली हाथ रहने में अधिक सुख है—अधिक आनंद है।

तीसरा अध्याय

प्रतिहिंसा

प्रतिहिंसा या बदले की जड़ आत्मा की दुर्बलता पर जमती है। जो अत्यंत कमीना और डरपोक होता है, वही प्रतिहिंसा का अधिक आदी होता है। कापुरुषों के सिवा ऐसे कौन हैं, जो उन लोगों को भीषण कष्ट देते हैं, जिनका वे खुद द्वेष करते हैं? जो लूट भी लेता है, और उसका ख़ून भी करता है, वह औरत नहीं, तो और क्या है? बदले की इच्छा तभी होती है, जब पहले हानि का ख़याल होता है; परंतु जो लोग उच्च-हृदय

होते हैं, उन्हें यह कहते हुए शर्म मालूम होती है कि इसने मुझे हानि पहुँचाई है।

यदि हानि उपेक्षा करने योग्य न हो, तो हानि-कर्ता उसे हानि पहुँचाकर मानों अपनी ही हानि करता है। क्या वैसा ही करके अपने-से छोटे लोगों की सूची में नाम लिखावेगा?

जो तेरे साथ अन्याय करता है, उसका तिरस्कार कर। जो तुझे अशांति दिलाता है, उसे धिक्कार दे।

ऐसा करने से तू केवल अपनी ही शांति की रक्षा नहीं करता, बल्कि उसके विरुद्ध कुछ प्रयोग न करते हुए—अपने को न गिराते हुए—उसे बदले की पूरी सजा दे देता है।

जिस प्रकार तूफ़ान और मेघ-गर्जन का असर सूर्य और तारों पर नहीं होता, बल्कि नीचे के पेड़ और पत्थरों पर उसके कोप का अंत होता है, इसी प्रकार हानि भी महान् आत्माओं तक नहीं पहुँच पाती। वह ऐसे ही लोगों पर, जो दूसरों को हानि पहुँचाते हैं, गिरकर लुप्त हो जाती है।

आत्मतेज या तेजस्विता की कमी से प्रतिहिंसा की प्रवृत्ति होती है। महान् पुरुष की आत्मा किसी को सताने से घृणा करती है—यही नहीं, वह तो उसका भी हित-साधन करती है, जिसने उसे कष्ट पहुँचाने का इरादा किया हो।

ऐ मनुष्य, बदला लेने की इच्छा क्यों करता है? किस प्रयोजन से उसके लिये सतत उद्योग करता है? क्या इसके द्वारा तू अपने प्रतिपक्षी को पीड़ा पहुँचाना चाहता है? यदि

हाँ, तो जान ले कि इससे स्वयं तुझको ही अत्यंत कष्ट उठाने पड़ेंगे।

जिस हृदय में प्रतिहिंसा के कीटाणु होते हैं, उसको वे कीटाणु ही नोच-नोचकर खा जाते हैं; परंतु जिसके बदला लेने का विचार वह करता है, वह आराम से रहता है।

प्रतिहिंसा से कष्ट होता है, इसलिये वह अनुचित है। प्रकृति ने इसे तेरे लिये नहीं बनाया। क्या जिसे हानि पहुँच चुकी है, उसे और भी कष्ट पहुँचाने की आवश्यकता है? जिसे दूसरे ने पीड़ा पहुँचाई है, उसके कष्ट का भार बढ़ाना क्या उचित है?

जो मनुष्य बदले का ध्यान करता है, वह मानो उस पीड़ा से संतुष्ट नहीं है, जो उसे अब तक पहुँच चुकी है।

जिस दंड का पात्र दूसरा मनुष्य है, उसे वह अपने दुःख के अतिरिक्त पाता है; परंतु जिसे वह हानि पहुँचाना चाहता है, वह मजे में हँसता हुआ अपनी राह जाता है। फिर भी वह प्रतिहिंसक अपनी मुसीबत की इस बढ़ती को देखकर आनंद मनाता है।

प्रतिहिंसा का इरादा-भर करने से दुःख होता है। उसकी प्रत्यक्ष क्रिया करना तो और भी खतरनाक है। कुल्हाड़ी जहाँ के लिये उठाई जाती है, वहाँ बहुत कम गिरती है; और उठाने-वाले को यह याद नहीं रहता कि वह मुझ पर ही उलटकर गिर सकती है।

बदला लेनेवाला मनुष्य चाहता तो है अपने शत्रु को हानि पहुँचाना; परंतु बहुधा वह स्वयं अपने ही विनाश को निमंत्रण देता है। वह निशाना तो लगाता है अपने विपक्षी की एक आँख पर, परंतु स्वयं अपनी ही दोनो आँखें गवाँ बैठता है।

यदि वह अपने लक्ष्य को न पहुँच पावे, तो दुखी होता है। परंतु यदि सफलता पा जाय, तो पछताता है।

न्याय का डर उसकी आत्मा की शांति को हर लेता है। उस डर से उसको छिपा रखने की चिंता उसके मित्र की शांति को भी नष्ट करती है।

क्या शत्रु को मृत्यु से तेरी घृणा को संतोष हो जायगा? क्या उसको सदा के लिये सुला देने से तेरी खोई हुई शांति मिल जायगी?

यदि तू उसे उसके अपराध के लिये दुःख देना चाहता हो, तो पहले उसे जीत, और फिर छोड़ दे। मर जाने पर तो तेरी प्रभुता उस पर चलेगी नहीं, और न वह तेरे क्रोध के बल का अनुभव कर पावेगा।

प्रतिहिंसा तो वह है, जिसमें बदला लेनेवाले की विजय हो, और जिसने उसे हानि पहुँचाई है, वह उसकी अप्रसन्नता के भार का अनुभव करे। यह तभी होता है, जब हानि पहुँचानेवाला कष्ट-सहन करे; जिस कारण से उसने उसे दुःख दिया हो, उसके लिये उसे पश्चात्ताप हो।

प्रतिहिंसा की प्रेरणा के मूल में तो क्रोध है। जो तुझे ऊँचा और बड़ा बनाती है, वह है उपेक्षा।

हानि के बदले में हत्या करने की भावना कायरपन से उत्पन्न होती है। जो हत्या करता है, उसे यह डर बना रहता है कि शत्रु कहीं जीता न रह जाय, और स्वयं इसका बदला न चुकावे।

हत्या से कलह तो मिट जाता है, परंतु कीर्ति नहीं मिलती। मार डालना चाहे सावधानी का कार्य हो, पर साहस का नहीं। यह खतरे से तो खाली है, पर सम्मान-वर्द्धक नहीं है।

किसी अपराध का बदला लेने से बढ़कर कोई बात आसान नहीं; परंतु उसके लिये क्षमा कर देने से बढ़कर सम्माननीय और कठिन दूसरी बात नहीं है।

सबसे बड़ी विजय वह है, जिसे मनुष्य स्वयं अपने ही ऊपर प्राप्त कर सकता है। जो हानि को महसूस नहीं करता, वह मानो उस हानि को हानि-कर्ता के ही घर भेज देता है।

जब तू प्रतिहिंसा का ध्यान करता है, तब यह स्वीकार करता है कि मैं इस अन्याय का अनुभव कर रहा हूँ; और जब उसकी शिकायत करता है, तब स्वीकार करता है कि इससे मुझे हानि पहुँची है। क्या तू यह चाहता है कि शत्रु के उस घमंड में यह विजय भी शामिल हो जाय?

जिसका अनुभव नहीं किया जाता, वह हानि नहीं समझी जाती। फिर जो मनुष्य उसको महसूस नहीं करना चाहता, वह बदला कैसे ले सकता है?

यदि तू किसी कष्ट या हानि को सहना अपनी शान के खिलाफ़ समझता हो, तो तेरे पास ऐसी शक्तियाँ भी हैं, जिनसे तू इस भावना को जीत सकता है।

अच्छे व्यवहार तेरा शत्रु तुझसे शत्रुता करने पर लज्जित होगा। जब वह तुझे हानि पहुँचाने का विचार करेगा, तो तेरी आत्मा की उच्चता और महत्ता उसे भयभीत कर देगी।

जितन बड़ा अन्याय हो, उतना ही अधिक गौरव उसे क्षमा करने में है। प्रतिहिंसा जितनी ही अधिक समर्थनीय है, उतनी ही अधिक प्रतिष्ठा क्षमा तत्परता में है।

क्या तू स्वयं अपने ही कार्य के विषय में न्याय करने का भी अधिकार रखता है? क्या स्वयं उस कार्य में शामिल होते हुए भी तुझे उसके लिये सज़ा सुनाने का अधिकार है? इसके पहले कि तू खुद उसकी निंदा करे, और लोगों को कहने दे कि तेरा काम ठीक था।

प्रतिहिंसक भयभीत रहता है, इसलिये तिरस्कृत होता है। जो क्षमाशीलता से भूषित है, लोग उसकी पूजा करते हैं। उसके कार्यों के स्तुति-स्तोत्र सदा अमर रहते हैं—सारे संसार का प्रेम खिंचकर उसकी ओर चला आता है।

चौथा अध्याय

निर्दयता, घृणा और असूया

यदि प्रतिहिंसा घोर तिरस्करणीय है, तो निर्दयता कैसी है? देख, निर्दयता में प्रतिहिंसा की दुष्टता तो है, परंतु उसकी उत्तेजना के लिये कुछ बहाना भी दरकार है।

मनुष्य इस बात को स्वीकार नहीं करते कि निर्दयता प्रकृति का एक अंग है। वे उसे अपने हृदय के लिये एक विजातीय वस्तु मानते और उसके लिये लज्जित होते हैं। क्या वे निर्दयता को अमानुषता नहीं कहते?

तब उसका उद्गम-स्थान कहाँ है? किस वस्तु पर उसका अस्तित्व है? उसका पिता है भय। फिर सोच, क्या भीति उसकी माता नहीं है?

वीर मनुष्य तब तक अपने शत्रु पर तलवार चलाता है, जब तक वह उसका प्रतिरोध करता है। उसने आत्मसमर्पण किया नहीं कि उसे संतोष हुआ नहीं।

जो डरता है, उसे पद-दलित करने में प्रतिष्ठा नहीं। जो अपने से नीचे है, उसका अपमान करना सद्गुणों में दाखिल नहीं। हाँ, जो गुस्ताख़ है, उसे अपने अधीन कर; जो विनीत है, उसे छोड़ दे। विजय के शिखर पर चढ़ने का यही मार्ग है।

परंतु जिसके पास न विजय तक पहुँचने योग्य ये सद्गुण हैं, और न इतने ऊँचे चढ़ने के योग्य साहस ही है, वह विजय के

आसन पर हत्या को और चक्रवर्तित्व के पद पर संहार को बिठाता है।

जो सबको डरता है, वह सबको मारता है। अत्याचारी क्यों निर्दय होते हैं? केवल इसलिये कि वे भीति के साम्राज्य में रहते हैं।

मामूली कुत्ता मुर्दे को तो नोच-खसोट डालता है; पर जब तक वह जीवित होता है, तब तक उसके मुँह की तरफ़ देख तक नहीं सकता। शिकारी कुत्ता शिकार में मार डालने के पीछे उसे नोचता-खसोटता नहीं।

राजा और प्रजा के अथवा आंतरिक (गृह) युद्ध में अधिक रक्तपात होता है; क्योंकि जो उनमें लड़ते हैं, वे कायर होते हैं। षड्यंत्री लोग नरघातक, ख़ूनी हुआ करते हैं; क्योंकि मृत्यु के मुँह में शब्द नहीं होते। अपनी पोल खुल जाने का भय ही उनसे यह घोर अकृत्य कराता है।

यदि तू निर्दय न होना चाहता हो, तो अपने को द्वेष की पहुँच के ऊपर उठा—यदि तू अमानुष न होना चाहता हो, तो अपने को मत्सर की पहुँच के परे रख।

प्रत्येक मनुष्य दो भिन्न दृष्टियों से देखा जा सकता है—एक में तो वह तुझे दुखदायी दिखाई देगा, और दूसरी में कम दिक़ करनेवाला। इनमें से तू उसको उस दृष्टि से देख, जिसमें वह तुझे कम-से-कम हानि पहुँचाता है। बस, तेरे मन में उसे हानि पहुँचाने की इच्छा न होगी।

वह कौन-सी बात है, जिसका उपयोग मनुष्य अपने भले के लिये नहीं कर सकता ? जो हमें बहुत क्रोध दिलाता है, वह द्वेष का नहीं, शिकायत का अधिक पात्र है, क्योंकि मनुष्य जिसकी शिकायत करता है, उसके साथ तो समझौता हो जाता है, परंतु जिसका वह द्वेष करता है, उसे तो बस, जान से ही मार डालता है।

यदि तेरे लाभ में किसी ने बाधा डाली हो, तो क्रोध के वशीभूत न हो। इससे तू विवेक को गँवा बैठेगा, और यह हानि पहली हानि से भी बढ़कर होगी।

जब तू किसी लब्ध-प्रतिष्ठ मनुष्य की ईर्ष्या करता है, जब उसकी पदवियों और महत्ता को देखकर तेरा क्रोध बढ़ता है, तब यह जानने का प्रयत्न कर कि वे उसके पास आईं कहाँ से ? खोजकर कि किन उपायों से ये उसको प्राप्त हुईं। बस, तेरी शत्रुता दया में बदल जायगी।

यदि उसी दाम में तुझे वह ऐश्वर्य प्राप्त होता है, तो यक़ीन रख कि यदि बुद्धिमान् होगा, तो उससे इनकार कर देगा।

उपाधियों के लिये क्या ख़र्च करना पड़ता है ? केवल ख़ुशामद ! मनुष्य अधिकार को किस तरह ख़रीदता है ? एक-मात्र उसका ग़ुलाम होकर, जो उस अधिकार को देता है।

क्या तू इसलिये कि दूसरे की स्वतंत्रता हरण करने के योग्य हो जाय, स्वयं अपनी आज़ादी खो देगा ? या जो ऐसा करता है, उसकी क्या तू स्पर्द्धा करेगा ?

मनुष्य के दुर्विकार

मनुष्य विना दाम के अपने बड़ों से कोई चीज़ नहीं ख़रीदता; और वह दाम क्या उसके मूल्य से अधिक नहीं है? क्या तू संसार के तरीक़े को उलट देगा—दाम और वस्तु दोनो लेगा?

जिस चीज़ को स्वीकार नहीं करना चाहता, उसके लिये तू ईर्ष्या नहीं कर सकता। इसलिये द्वेष के इस कारण से दूर रह, और अपने अंतःकरण से निष्ठुरता की जड़ को निकाल दे।

यदि तुझे सम्मान प्राप्त है, तो क्या तू उस चीज़ के लिये असूया करेगा, जो सम्मान को खोकर प्राप्त की गई है? यदि तू सद्गुण का मूल्य जानता है, तो क्या तुझे उन आदमियों पर तरस नहीं आता, जिन्होंने इतनी नीचता के साथ उसका बदला किया है?

यदि तूने स्वयं अपने मन को यह शिक्षा दी है कि दूसरों के ऊपरी हित को विना पछतावे के सहन कर ले, तो उनके वास्तविक सुख की कथा सुनकर तुझे अवश्य आनंद होगा।

यदि तू किसी सुयोग्य मनुष्य के पास अच्छी बातों को आते हुए देखेगा, तो आह्लादित हो उठेगा। सद्गुण को सद्गुणी के उत्कर्ष से सुख होता है।

जो दूसरे के सुख में हर्षित होता है, वह अपने सुख की वृद्धि करता है।

पाँचवाँ अध्याय

विषाद

प्रसन्न मनुष्य की आत्मा पीड़ा के भी मुख-मंडल पर मुसकिराहट ला देती है; परंतु शोकाकुल मनुष्य की निराशा हर्ष की कांति का भी नाश कर देती है।

शोकाकुलता का उद्गम क्या है ? आत्मा की अशक्तता। उसको बल कहाँ से मिलता है ? तेजस्विता के अभाव से। तू यदि उसके सामने युद्ध करने के लिये खड़ा रहेगा, तो तेरे वार करने के पहले ही वह समर-क्षेत्र से भाग जायगी।

वह मनुष्य-जाति की शत्रु है, इसलिये उसे अपने हृदय से बाहर कर दे। वह तेरे जीवन की मधुरता में विष मिलाती है, इसलिये उसे अपने घर में न आने दे।

वह एक घास के तिनके के नुक़सान को इतना बड़ा बना देती है, मानो तेरे सारे वैभव का सत्यानास हो गया हो। वह एक ओर जहाँ क्षुद्र बातों के लिये तेरे अंतःकरण को उद्विग्न करती है, वहाँ दूसरी ओर बड़े काम की बातों से तेरा ध्यान भी हटा देती है। देख, तेरे साथ उसका जो संबंध है, उसकी सूचना वह पहले ही दे देती है।

वह तंद्रा को तेरे सद्गुणों पर बुरक़े की तरह ढँक देती है। वह उन लोगों से उन्हें छिपा रखती है, जो उन्हें देखकर तेरा सम्मान करें। एक ओर तो वह तेरे सद्गुणों को उलझन

में डाल देती—दबा देती—है, और दूसरी ओर तेरे लिये उनके ही निमित्त परिश्रम करना अत्यंत आवश्यक बना देती है।

देख, वह तुझे बुराई के द्वारा दबाती है; जब तेरे हाथ तेरे सिर से बोझ को उतारकर फेकना चाहते हैं, तब वह उन्हें बाँध देती है।

यदि तू घृणित बात से बचना चाहे, कायरता का तिरस्कार करना चाहे, अन्याय को अपने हृदय से निकाल देना चाहे, तो शोक को अपने हृदय पर अधिकार न करने दे। उसे धर्मनिष्ठा का स्वाँग न बनाने दे; ज्ञान का ढोंग रचकर वह तुझे न ठगे। धर्म तेरे विधाता का—परमात्मा का—आदर करता है; उस पर शोक की घटा न घिरने दे। ज्ञान तुझे सुखी बनाता है; इसलिये यह जान ले कि दुःख उसकी दृष्टि के लिये अपरिचित है।

किस बात पर मनुष्य को दुखी होना चाहिए? सिर्फ़ वेदनाओं और कष्टों पर। जब हर्ष के साधन उससे छीने नहीं गए हैं, तब उसका हृदय हर्ष का त्याग क्यों करे? क्या यह सहज विपत्ति भोगने के लिये ही महान् विपत्ति भोगना नहीं है?

जो मनुष्य अपने हृदय को इसलिये रंजीदा करता है कि वह खिन्न है, इसलिये नहीं कि उसे किसी तरह की व्यथा हो रही है, वह उस मातमी आदमी की तरह है, जो किराए पर शोक दिखाता और केवल बनावटी आँसू टपकाता है।

प्रसंग दुःख की उत्पत्ति का कारण नहीं। जिस बात से एक को रंज होता है, उसी बात से दूसरों को ख़ुशी भी हो सकती है।

मनुष्यों से पूछ कि क्या तुम्हारे शोक से बिगड़ी बात बन जाती है ? वे खुद क़ुबूल कर लेंगे कि शोक करना मूर्खता है। जो अपनी बुराइयों को धैर्य के साथ सहन करता है, जो साहस के साथ विपत्ति से टक्कर लेता है, वे उसकी प्रशंसा करते हैं। पर वाहवाही के साथ ही उनका अनुकरण भी होना चाहिए।

शोकाकुलता प्रकृति के विरुद्ध है। वह उसकी गति में बाधा डालती है। प्रकृति ने जिसे प्रिय बनाया है, उसे वह अप्रिय बना देती है।

जैसे कोई पेड़ तूफ़ान में उखड़ जाता और फिर अपना सिर ऊँचा नहीं उठाता, उसी प्रकार मनुष्य का हृदय शोक के आवेग में जब सिर झुका देता है, तो फिर अपनी पहली शक्ति को नहीं पाता।

जैसे बरसाती पानी के बहाव से पहाड़ पर की बरफ़ गल जाती है, वैसे ही आँसुओं के कारण गालों से सुंदरता धुल जाती है। इन दोनो में से कोई भी अपनी पूर्व स्थिति को नहीं प्राप्त कर पाते।

जैसे मोती अंगूर के रस से गल जाता है, यद्यपि पहले उसका ऊपरी भाग धुँधला होता दिखाई देता है, इसी तरह ऐ मनुष्य, हृदय की उदासीनता सुख को निगल जाती है, यद्यपि पहले-पहल वह उस पर अपनी सिर्फ़ छाया ही फैलाती हुई मालूम होती है।

शोक को आम सड़कों पर देख; मनोरंजन की जगहों पर नज़र फेंक; क्या कोई उसकी ओर देखता है ? क्या वह उसकी आँख नहीं बचाता, और क्या उसे देखकर मनुष्य रफू-चक्कर नहीं हो जाता ?

देख, वह जड़-कटे फूल की तरह किस प्रकार अपना सिर झुका लेता है। उसकी आँखें सिवा रोने के दूसरा कोई काम नहीं करतीं।

क्या उसके मुख में बातचीत के लिये शब्द हैं ? हृदय में मिलने-जुलने का प्रेम है ? क्या उसके मस्तिष्क में तर्क-शक्ति है ? उससे शोक का कारण पूछ, उसे पता ही नहीं है। भला, शोक के अवसर का ही पता लगा। तू देखेगा, शोक का कोई अवसर ही नहीं है।

उसका बल उसका साथ नहीं देता, और अंत को वह मसान में जाकर खाक हो जाता है। फिर कोई नहीं पूछता कि इसको क्या हुआ ?

क्या तेरे बुद्धि है ? फिर भी तू इस बात को नहीं समझा ? क्या तुझमें धर्म-भाव है ? फिर भी त अपनी ग़लती को नहीं जानता ? ईश्वर ने दया करके तुझे उत्पन्न किया है। यदि उसका यह हेतु न होता कि तुझे सुख हो, तो उसने—उसकी उपकार बुद्धि ने— तुझे पैदा ही न किया होता। इस दशा में त उसके ऐश्वर्य के सामने से भाग जाने का साहस कैसे करता है ?

जब-तक तू अपनी निर्दोषिता से-अपने भोलेपन से-अत्यंत सुखी है, तब तक मानो उसकी बहुत प्रतिष्ठा करता है। पर उसके विधान पर मुँह बनाना उसको असंतुष्ट करना है।

उसने जितनी वस्तुएँ उत्पन्न की हैं, वे क्या परिवर्तन-शील नहीं हैं ? यदि हैं, तो तू उनके परिवर्तन पर क्यों सिर पीटता है ?

यदि हम प्रकृति का नियम जानते हैं, तो फिर किसलिये उसकी शिकायत करें ? यदि हमें उसका ज्ञान नहीं है, तो हमें अपनी ही अंधता के सिवा और किसको दोष देना चाहिए ? जिस बात का प्रमाण पग-पग पर मिलता है, उसे भी हम नहीं देख सकते ?

यह जान ले कि तुझे संसार को क़ानून नहीं सिखाना है; तेरा काम तो इतना ही है कि जितना तू उन्हें जानता जा, उतना ही मानता जा। यदि वे तुझे कष्ट पहुँचाते हों, तो उसके लिये रंज करना मानो अपने ही कष्ट को बढ़ाना है।

अच्छे-अच्छे बहानों के धोखे में न आ, और न यह समझ कि दुःख करने से विपत्ति दूर होती है। यह तो औषधि के रूप में विष है। यह तेरी छाती से तीर निकालने का बहाना करके उसे तेरे हृदय में भोक देता है।

यदि शोक तुझे अपने मित्रों से अलग कर दे, तो क्या इससे यह सूचित नहीं होता कि तू उनका साथ करने योग्य नहीं है ? यदि वह तुझे एक ओर कोने में बिठा देता है, तो

क्या इससे यह नहीं प्रकट होता कि वह खुद शर्मिंदा हो गया है?

यह तेरे स्वभाव के विपरीत है कि तू विपत्ति के बाणों का मुक़ाबला, विना चोट पहुँचे, करे। न तर्क ऐसी सलाह ही देता है। तेरा धर्म तो यह है कि तू विपत्ति को एक मनुष्य की नाईं सहन कर। किंतु इसके पहले तुझे मनुष्य की तरह उसे महसूस भी करना चाहिए।

तेरे हृदय से सद्गुणों का लोप न होते हुए भी तेरी आँखों से आँसू टपक सकते हैं। ऐसे समय तू सिर्फ़ इसी बात का ध्यान रख कि एक तो वे सकारण हों, और दूसरे बहुत न बहें।

बुराई की अधिकता उन आँसुओं की तादाद से नहीं जानी जाती, जो उसके लिये गिराए गए हैं। गहरा विषाद उसी तरह इन प्रमाण-चिह्नों से परे है, जिस तरह कि अत्यंत हर्ष वचन के परे है।

विषाद की तरह आत्मा को कमज़ोर करनेवाला और कौन है? शोक की तरह उसे नीचे गिरानेवाला और कौन है? क्या दुखी मनुष्य किसी उच्च कार्य के लिये तैयार होता है, या क्या सद्गुण की प्राप्ति के लिये वह अपनी कमर कसता है?

यदि अशुभ के अधीन होने से बदले में कोई लाभ न होता हो, तो तू अपने को उसके अधीन न कर। उस चीज़ के लिये जो खुद एक बुराई है, भलाई के साधनों को अपने हाथ से न खो।

मनुष्य के विशेष लाभ

पहला अध्याय

कुलीनता और प्रतिष्ठा

कुलीनता का निवास मनुष्य के हृदय में है, और सद्‌गुण के सिवा सच्ची प्रतिष्ठा कहीं नहीं रहती।

राजों की कृपा बुरे कामों से ख़रीदी जा सकती है, पद और पदवियाँ धन से ख़रीदी जा सकती हैं, किंतु सच्चा सम्मान नहीं।

बुरे काम करने से अपराधी की आत्मा उच्च नहीं होती—वह गौरव को नहीं पहुँचता; और न धन से मनुष्य कुलीन हो सकता है।

जब उपाधियाँ सद्‌गुण के कारण दी जायँ, जब देश की सेवा करने के कारण किसी का आदर किया जाय, तब सम्मान करने-वाला भी सम्मान पानेवाले की तरह गौरव को प्राप्त होता है, और इससे संसार का लाभ होता है।

क्या तू ऐसे कार्य के लिये सम्मान पाना चाहता है, जिसे लोग नहीं जानते ? या ऐसे काम के लिये आदर पाना चाहता है, जिसके बारे में लोग कहें कि इसकी क्या जरूरत है ?

जब वीर मनुष्य के सद्‌गुण उसकी संतान में दिखाई देते हैं,

तब उसकी पदवियाँ उनको फब जाती हैं। परंतु यदि वे उनके योग्य न हों, तो क्या उन्हें गिरा हुआ नहीं रहते ?

वंश-परंपरागत सम्मान अत्यंत उच्च माना जाता है; परंतु तर्क उस व्यक्ति के पक्ष में है, जिसने खुद उसे प्राप्त किया है।

जो मनुष्य स्वयं गुण-हीन होते हुए अपने बाप-दादों के कार्यों का बखान कर अपनी महत्ता जताता है, वह उस चोर की तरह है, जो देवालय में घुसकर अपने को रक्षा का अधिकारी बताता है।

अंधे के मा-बाप यदि देख पाते हों, तो इससे उसे क्या लाभ ? गूँगे के बाबा अच्छे वक्ता हों, तो इससे उसका क्या फ़ायदा ? इसी तरह यदि नीच मनुष्य के पूर्वज कुलीन हों, तो इससे उसे क्या लाभ ?

सद्‌गुणों में प्रवृत्त मन मनुष्य को बड़ा बनाता और बिना उपाधि के ही उसे सामान्य मनुष्यों से ऊँचे उठा देता है।

वह सम्मान को स्वयं उपार्जित करता है; पर दूसरे लोग उसे औरों के बल पाते हैं। क्या वह उनसे यह नहीं कहेगा कि ऐसे ही मनुष्यों के कुल में जन्म लेकर आपने उसका गौरव बढ़ाया है ?

जैसे छाया का आधार कोई-न-कोई वस्तु होती है, वैसे ही सच्चा सम्मान सद्‌गुण पर अवलंबित होता है।

यह न कह कि सम्मान साहस का पुत्र है, और न यह विचार कर कि जीवन को संकट में डालना ही उसका मूल्य

हो सकता है। इसकी प्राप्ति का साधन कार्य नहीं, कार्य करने की विधि है।

राज्य के सूत्र का संचालन करने के लिये सब लोग नहीं बुलाए जाते, और न हरएक आदमी सेना पर कमांड कर सकता है। अतएव जो काम तेरे सिपुर्द किया गया है, उसे अच्छी तरह कर; प्रशंसा तेरा साथ कभी न छोड़ेगी।

यह न कह कि प्रख्याति के लिये कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करना ज़रूरी है, या उसमें परिश्रम और ख़तरा अवश्य ही होना चाहिए। जो स्त्री पतिव्रता है, उसकी क्या प्रशंसा नहीं होती? जो मनुष्य प्रामाणिक है, वह क्या सम्मान पाने योग्य नहीं है?

कीर्ति की पिपासा बड़ी उग्र और जबरदस्त होती है— सम्मान की अभिलाषा बड़ी प्रबल होती है। इन दोनों वस्तुओं के देने में ईश्वर के उद्देश्य महान् हैं।

जब सर्व-साधारण के लिये साहस-पूर्ण कार्य करने की आवश्यकता हो, जीवन को देश-हित के लिये दे देना ज़रूरी हो, तब हमारे सद्गुणों में शक्ति का योग कौन करता है? केवल महत्त्वाकांक्षा।

सम्मान प्राप्त करने से कुलीन मनुष्य प्रसन्न नहीं होता। उसे तो इसी बात पर अभिमान रहता है कि मैं इसके योग्य हूँ।

क्या यह कहने की अपेक्षा कि इसका पुतला क्यों खड़ा किया गया है, यह पूछना बेहतर नहीं कि इसका पुतला क्यों नहीं खड़ा किया गया?

महत्त्वाकांक्षी अन्य सब लोगों में हमेशा पहला नंबर पाता है। वह आगे बढ़ता चला जाता है, और पीछे नहीं देखता। हजारों आदमियों को बड़ी दूर पीछे छोड़ने में उसे जो हर्ष होता है, उसकी अपेक्षा एक आदमी को अपने आगे देखने से उसकी आत्मा को अधिक व्यथा होती है।

महत्त्वाकांक्षा का मूल तो प्रत्येक मनुष्य के हृदय में होता है, परंतु सबमें वह अंकुरित तथा पल्लवित नहीं होती। कुछ लोगों में डर उसे दबा रखता है, और बहुतों में 'विनय' उसकी वृद्धि को रोक देती है।

यह आत्मा का आंतरिक आवरण है। मनुष्य-शरीर के उत्पन्न होने पर सबसे पहले वह उससे आच्छादित हो जाता और उसका नाश होने पर सबसे पीछे उतारा जाता है।

यदि महत्त्वाकांक्षा का उपयोग योग्यता-पूर्वक किया जाय, तो प्रतिष्ठा का कारण होगा। यदि तू उसका प्रयोग बुरे कामों में करेगा, तो वह तुझे नीचा दिखावेगी, और तेरा सत्यानास कर देगी।

विश्वासघाती के हृदय में महत्त्वाकांक्षा लुककर बैठी रहती है; धूर्तता उसके घूँघट में अपना मुँह छिपाती है, और अविचल कपट-व्यवहार उसे मीठी वाणी देता है। परंतु अंत में लोग जान जाते हैं कि असल बात क्या है।

जाड़े से ठिठुर जाने पर भी सर्प की काटने की शक्ति नष्ट नहीं होती; शीत के द्वारा मुँह बंद हो जाने पर भी उसके

दाँत ज्यों-के-त्यों बने रहते हैं। तू भले ही उसकी दशा पर दया दिखला; पर वह अपना धर्म तुझे बिना दिखाए न रहेगा--अपनी छाती पर उसे क्यों न सुला, वह तुझे यमराज के घर पहुँचाए बिना न रहेगा।

जो सच्चा गुणी है वह गुण की महत्ता के लिये ही गुण को चाहता है। वह उस शाबाशी का तिरस्कार करता है, जो महत्त्वाकांक्षी का लक्ष्य होती है।

यदि सद्गुण दूसरों की प्रशंसा के बिना संतुष्ट नहीं हो सकता, तो उसकी दशा कितनी दयनीय है! उसका हृदय इतना उच्च है कि वह अपनी हानि की पूर्ति तक नहीं चाहता। उससे अधिक तो वह हरगिज नहीं चाहता, जितना मिल सकता है।

ज्यों-ज्यों सूर्य ऊँचे चढ़ता जाता है, त्यों-त्यों छाया छोटी पड़ती जाती है। इसी तरह सद्गुण जितना ही अधिक होता है, उतना ही कम वह स्तुति का लोभ करता है। तो भी सम्मान के रूप में उसे पारितोषिक मिले बिना नहीं रहता।

वैभव उस मनुष्य से छाया की तरह दूर ही रहता है, जो उसके पीछे पड़ता है। परंतु जो उससे दूर रहता है, आप ही वह उसके पीछे-पीछे चलता है। यदि तू बिना गुण ही के उसकी चाह करता है, तो वह तुझे कभी नहीं मिल सकता; पर यदि तू उसके योग्य है, तो अपने को कितना ही क्यों न छिपावे, वह तेरे पास आए बिना रह नहीं सकता।

जो वस्तु सम्माननीय है, उसकी प्राप्ति का प्रयत्न कर; जो

काम उचित है, वही कर। इससे दूसरे ऐसे लाखों आदमियों के स्तुति-स्तोत्रों की अपेक्षा, जो यह नहीं जानते कि तू उनके योग्य है, तेरी अंतरात्मा की वाहवाही ही तुझे अधिक हर्ष-प्रद होगी।

दूसरा अध्याय

विज्ञान और विद्या

मनुष्य के मन के लिये बढ़िया-से-बढ़िया काम है उस जगत्पिता के कार्यों का मनन करना।

प्रकृति के विज्ञान से जिसे प्रसन्नता होती है, उसके लिये प्रत्येक वस्तु ईश्वर का प्रमाणभूत है। प्रत्येक वस्तु, जो ईश्वर के अस्तित्व को प्रमाणित करती है, इस बात का कारण बताती है कि क्यों ईश्वर की पूजा-आराधना करनी चाहिए।

उसका मन प्रति-क्षण आकाश तक ऊँचे उठता रहता है। उसका जीवन भक्ति-युक्त कार्यों की एक शृंखला है।

जब वह बादलों की ओर अपनी आँख उठाता है, तो क्या आकाश को चमत्कारों से पूर्ण नहीं पाता? जब वह नीचे पृथिवी की ओर देखता है, तो क्या कीड़े-मकोड़े उससे चिल्ला-कर यह नहीं कहते कि उस सर्वशक्तिमान् की अपेक्षा कोई भी यत्किंचित् शक्ति हमें न्यून नहीं बना सकती?

ग्रह और नक्षत्र अपने मार्गों में—कक्षाओं में—भ्रमण करते हैं। सूर्य सदा अपने ही स्थान पर बना रहता है। धूमकेतु

आकाश-मंडल में भ्रमण करता और अपने निश्चित मार्ग पर पुनः लौट आता है। ऐ मनुष्य, बता तो, ईश्वर के सिवा इनको और कौन बना सकता था? उसके अनंत ज्ञान के सिवा और कौन ऐसे नियमों की रचना कर सकता था?

उनकी दीप्ति जाज्वल्यमान है, फिर भी वे क्षीण नहीं होते; उनकी गति अत्यंत द्रुत होने पर भी कोई एक दूसरे के मार्ग में भ्रमण नहीं करता।

पृथ्वी की ओर दृष्टि कर और देख, उस पर क्या-क्या पैदा होता है। उसके गर्भ की जाँच कर और देख, उसमें क्या-क्या भरा है। क्या ज्ञान और शक्ति के बिना इनका अस्तित्व संभव है?

घास को बढ़ने का हुक्म कौन देता है? कौन उसे मौसिम पर पानी देता है? बैल उसे काटता है; घोड़े आदि पशु उससे अपना पेट भरते हैं। वह कौन है, जो उन्हें यह देता है?

जो नाज तू बोता है, उसे कौन बढ़ाता है? कौन उसको हज़ारगुना करके तुझे देता है?

आम और अंगूर को तेरे लिये कौन समय पर पकाता है? क्या तू उसे जानता है?

क्या क्षुद्र-से-क्षुद्र मक्खी भी अपने आप पैदा हो सकती है? यदि तू ईश्वर से कुछ भी छोटा होता, तो क्या उसे वैसा बना सकता था?

पशु जानते हैं कि हम जीवित हैं; परंतु इस पर उन्हें आश्चर्य

नहीं होता। वे अपने जीवन को पाकर ख़ुश होते हैं; परंतु यह नहीं जानते कि इसका अंत भी होगा। प्रत्येक प्राणी क्रम से अपना काम करता है; हज़ारों पीढ़ियाँ हो जाने पर भी किसी प्राणी-जाति की कमी नहीं होती।

यदि तू अंश-मात्र को देखकर संपूर्ण को दिव्य और भव्य समझता है, तो उन अंशों के अंदर उस जगत्पिता की महत्ता खोजने से अधिक अच्छे काम में तेरी आँखों का और उनके चमत्कारों की छान-बीन करने से अच्छे काम में तेरे मन का और क्या सदुपयोग हो सकता है?

उनकी उत्पत्ति और रचना में शक्ति और दया भरी हुई दिखलाई पड़ती है; न्याय और सौजन्य उनके लिये बनाई गई जीवन-सामग्री में झलकते हैं। देख तो, सब लोग अपनी-अपनी धुन में मग्न हैं, कोई किसी से ईर्ष्या-द्वेष नहीं करता।

इसके मुक़ाबले में कोरे शब्दों का अध्ययन क्या चीज़ है? ज्ञान किस शास्त्र में है? केवल प्रकृति के अध्ययन में।

किसी ईश्वर-रचित वस्तु की पूजा करने के पहले यह पता लगा कि उसका उपयोग क्या है? यह पृथ्वी ऐसी कोई वस्तु नहीं उत्पन्न करती. जो तेरे काम की—भले की—न हो। क्या भोजन, आच्छादन और औषध-सामग्री केवल प्रकृति के द्वारा नहीं प्राप्त हुई है?

तब समझदार कौन है? वह, जो इसे जानता है। समझ किसमें है? उसमें, जो इसका विचार करता है। दूसरी तमाम

बातों में इन्हीं को बढ़कर सम्मान दे—फिर विज्ञान चाहे कितनी ही उपयोगिता रखता हो, ज्ञान को चाहे कितना ही कम अभिमान हो—और उनके द्वारा अपने सहवासी को लाभ पहुँचा।

जीना और मरना, आज्ञा देना और आज्ञा का पालन करना, काम करना और हानि उठाना, इन बातों की चिंता तुझे नहीं रखनी पड़ती। नीति और सदाचार तुझे यह पाठ पढ़ावेंगे। जीवन का सद्व्यय अथवा मितव्यय इन्हें तेरे सामने ला रक्खेगा।

देख, ये तेरे अंतःकरण में लिखे हुए हैं; तुझे सिर्फ़ इनके याद दिलाने-भर की देर है, फिर आसानी से तुझे उनका खयाल हो जायगा। बस, तू ध्यान-भर दे, उनको पा जायगा।

दूसरे सब शास्त्र व्यर्थ हैं, दूसरा सारा ज्ञान केवल आडंबर है। देख, यह मनुष्य के जीवन के लिये न तो आवश्यक है, न लाभदायक, और न यह हमें अच्छा और प्रामाणिक बनाता है।

ईश्वर के प्रति श्रद्धा और दूसरे प्राणियों के प्रति उपकारशीलता—ये क्या तेरे महान् कर्तव्य नहीं हैं? ईश्वर के कार्यों के चिंतन और मनन की तरह और कौन-सी बात तुझे उसके प्रति श्रद्धा की शिक्षा दे सकती है? अपने आश्रित जनों की अवस्था के ज्ञान से बढ़कर तुझे उपकारशीलता की प्रेरणा किससे मिल सकती है?

प्राकृतिक दैव-योग

पहला अध्याय

उत्कर्ष और विपत्ति

उत्कर्ष से अपने हृदय को सीमा के बाहर न फूलने दे, और न दैव की प्रतिकूलता से अपनी आत्मा को गिरने दे।

उन्नति की मुसकान स्थिर नहीं। उस पर विश्वास न रख। उसका रोष भी सदा नहीं टिकता। इसलिये आशा तुझे धैर्य का पाठ पढ़ावे।

विपत्ति को अच्छी तरह सहना कठिन है; परंतु उत्कर्ष-काल में संयम रखना तो बस, ज्ञान की ही सीमा है।

सपत्ति और विपत्ति तेरी स्थिरचित्तता की कसौटी हैं। तुझे अपनी आत्मा की शक्ति का बोध कराने के लिये इनके सिवा दूसरी चीज़ की ज़रूरत नहीं। जो चीज़ें तेरे पास आवें, उन पर तू नज़र रख।

उन्नति को देख। वह कैसी मीठी-मीठी बातों से तुझे फुसलाती है! किस तरह बेजाने वह तेरा बल-वीर्य हरण कर लेती है!

यद्यपि आपत्काल में तेरा चित्त स्थिर रहा हो, विपत्ति ने तुझे जीत न पाया हो, तथापि उन्नति ने तुझे जीत लिया है।

संपत्ति के समय तू नहीं जानता कि तेरी ताक़त अब नहीं लौटेगी—तुझे उसकी फिर आवश्यकता पड़ेगी।

कष्ट और यंत्रणा से शत्रुओं को भी दया आ जाती है। सफलता और सुख को देखकर मित्र भी ईर्ष्या करने लग जाते हैं।

विपत्ति में सत्कार्य का बीज रहता है। वह वीरता की पालक और साहस की धाय है। दुनिया में ऐसा कौन है, जो अपने पास काफ़ी चीज़ होते हुए भी अधिक के लिये अपने को ख़तरे में डालेगा—आराम से गुज़ारते हुए अपने जीवन को संकट में डालेगा?

सच्चा सद्गुण हर तरह की परिस्थितियों में सहायता करता है; परंतु मनुष्य को उसके बहुत-से परिणाम तब दिखाई देते हैं, जब उसके साथ कोई दुर्घटना हो जाती है।

विपत्ति में दूसरे लोग मनुष्य का साथ छोड़ देते हैं। वह देखता है कि मेरी सब आशाओं का आधार अकेला मैं ही हूँ। तब वह अपनी आत्मा को जाग्रत् और सचेत करके अपनी कठिनाइयों का सामना करता है। उन्हें उसके आगे झुकना पड़ता है।

उत्कर्ष-काल में वह अपने को सुरक्षित मानता है, और ख़याल करता है कि आस-पास के ख़ुशामदी लोग मेरे साथ अत्यंत स्नेह रखते हैं। इससे उसकी लापरवाही बढ़ जाती और वह ठेलुआ हो जाता है। वह अपनी आँखों के

सामनेवाले ख़तरे को नहीं देख पाता—दूसरे की भरोसा रखता और अंत को धोखा खाता है।

मुसीबत में तो प्रत्येक मनुष्य अपनी आत्मा को सलाह दे सकता है, परंतु उत्कर्ष सत्य को अंधा कर देता है।

उस हर्ष की अपेक्षा, जो मनुष्य को मुसीबत सहने के अयोग्य बनाता है, और उसे फिर उसी मुसीबत में डुबो देता है, वह दुःख वेहतर है, जो उसे संतोष तक पहुँचाता है।

अतिशयता में मनोविकारों की प्रबलता होती है। मितता या सौम्यता ज्ञान का परिणाम है।

जीवन-भर ईमानदार रह। समस्त स्थित्यंतरों में संतुष्ट रह। इससे तुझे समस्त संयोगों में लाभ होगा, और तेरा प्रत्येक कार्य तेरी स्तुति का कारण होगा।

समझदार आदमी प्रत्येक वस्तु को लाभ का साधन बना लेता है। वह समृद्धि के समस्त रूपों को एक ही दृष्टि से देखता है। वह संपत्काल में संयम एवं नियम से रहता है, विपत्ति पर विजय प्राप्त करता और सब स्थितियों में अविचल रहता है।

तू न तो उत्कर्ष में अभिमानी हो, और न विपत्ति के समय निराश; न तो संकट को निमंत्रण दे और न कायर की तरह उसके सामने से भाग। जो वस्तु तेरा साथ नहीं दे सकती, उससे दूर रह।

विपत्ति को आशा के पंख न तोड़ने दे, और न उत्कर्ष को दूरदर्शिता के प्रकाश को धुँधला बनाने दे।

जो अपने ध्येय से निराश हो जाता है, वह उस तक कभी नहीं पहुँच पाता; जो नहीं देखता, वह उसमें गिरकर टुकड़े-टुकड़े हो जाता है।

जो उत्कर्ष को अपना सौभाग्य मानता है, जो उससे कहता है कि तेरी बदौलत मुझे सुख होगा,—ओह! वह अपने जहाज़ का लंगर उस बालू में डालता है, जिसे समुद्र की लहरें अपने साथ बहा ले जाती हैं।

जैसे पानी का स्रोत पहाड़ से निकलकर समुद्र को जाते समय नदी के आस-पास के सारे खेतों का आलिंगन करता है, और किसी जगह नहीं ठहरता, उसी तरह संपद् मानव-संतान से भेंट करती है। उसकी गति निरंतर है। वह कहीं नहीं ठहरती। वह हवा की तरह चंचल है। तो भला, तू उसे कैसे पकड़ रक्खेगा? जब वह तुझे आलिंगन करती है, तब मानो तुझे आशीर्वाद देती है; परंतु देख, ज्यों ही तू उसे धन्यवाद देने के लिये मुँह खोलता है, वह दूसरे के पास चली जाती है।

दूसरा अध्याय

पीड़ा और रोग

शरीर का रोग आत्मा पर भी प्रभाव डालता है। एक दूसरे के विना कोई नीरोग नहीं रह सकता।

सारी बीमारियों में वेदना अधिक दुःखदायिनी होती है। क़ुदरत के पास इसकी बहुत ही दवाएँ हैं।

जब स्थिरता तेरा साथ छोड़ दे, तब तर्क को तू याद कर; और जब धैर्य छोड़ दे, तब आशा को बुला।

कष्ट-सहन तेरे स्वभाव के लिये आवश्यक है। वह छाया की तरह तेरे पीछे लगा हुआ है। क्या तू यह चाहता है कि चमत्कारों के द्वारा उससे अपने को बचा ले? या कष्ट के उपस्थित होने पर तुझे अफ़सोस होता है? अरे, यह तो सबके भाग्य में बदा है।

जिस स्थिति में तू उत्पन्न हुआ है, उससे मुक्त रहने की आशा करना न्यायोचित नहीं है। परिस्थिति-प्राप्त धर्म का नम्रता-पूर्वक पालन कर।

क्या तू ऋतुओं से कहेगा कि मत गुज़रा करो, मैं बुड्ढा हो जाऊँगा? क्या यह बेहतर नहीं कि जिस बात को हम किसी तरह नहीं हटा सकते, उसे संतोष-पूर्वक सहन करें?

जो दर्द बहुत देर रहता है, वह सौम्य होता है। इसलिये उसकी शिकायत करते समय संकोच कर। पर जो बहुत उग्र होता है, वह थोड़ी ही देर ठहरता है—देखते-देखते उसका अंत हो जाता है।

तेरा शरीर तेरी आत्मा का सेवक है। वह इसलिये बनाया गया है कि तेरी आत्मा की सेवा करे। जब तू शरीर की पीड़ाओं के लिये आत्मा को व्यथित करता है, तब देख, तू उसे आत्मा से बढ़कर महत्त्व देता है।

समझदार आदमी का वस्त्र यदि काँटों में फट जाय, तो

वह दुःख नहीं करता। इसी तरह धीर मनुष्य भी अपने आवरण को कष्ट पहुँचने के कारण आत्मा को कष्ट नहीं देता।

तीसरा अध्याय

मृत्यु

जैसे धातु की बनावट से कीमियागर के कौशल की पहचान होती है, उसी प्रकार मृत्यु जीवन की कसौटी है। यह ऐसी कसौटी है, जो समस्त कार्यों की असलियत बताती है।

यदि तू किसी के जीवन का विचार करना चाहे, तो उसकी अवधि की जाँच कर। उसका अंत प्रयत्न को सफल बनाता है। कपट-व्यवहार का अंत हुआ नहीं कि सत्य के दर्शन हुए।

जो अच्छी तरह मरना जानता है, समझ ले, उसने अपना जीवन बुरी तरह नहीं खोया; और न उस मनुष्य ने अपना सारा समय व्यर्थ गँवाया, जिसने जीवन के अंतिम भाग का उपयोग इस तरह किया, जिससे उसे गौरव मिले।

जो उचित रीति से मरता है, उसका जन्म व्यर्थ नहीं हुआ। वह व्यर्थ जीवित नहीं रहा, जिसकी मृत्यु सुख-पूर्वक हुई हो।

जो यह सोचता रहता है कि एक दिन मुझे मरना है, वह अपने जीवन-काल में संतुष्ट रहता है। जो उसे भूलने का प्रयत्न करता है, उसे किसी भी बात से आनंद नहीं मिल सकता। उसका हर्ष उसे ऐसे रत्न की तरह दिखाई देता है, जिसके खोए जाने की आशंका उसे प्रतिक्षण बनी रहती है।

क्या तू कुलीन मनुष्य की तरह मरना चाहता है ? यदि हाँ, तो अपने पापों को अपने से पहले मरने दे। सुखी वही मनुष्य है, जिसने अपने जीवन का कार्य मृत्यु के पहले ही समाप्त कर लिया है, जिसके लिये जब मौत की घड़ी आती है, तब मरने के सिवा और कोई काम बाक़ी नहीं रहता, जो विलंब की इच्छा नहीं करता, समय बिताने के लिये जिसके पास कोई काम ही बाक़ी नहीं है।

मौत को न टाल। यह दुर्बलता है। इससे न डर। तू नहीं जानता कि वास्तव में यह है क्या। इसके संबंध में जो कुछ निश्चित रूप से ज्ञात है, वह यही कि यह तेरे समस्त दुःखों का अंत कर देती है।

यह मत खयाल कर कि दीर्घतम जीवन अत्यंत सुखमय होता है; बल्कि यह जान कि जिस जीवन का उत्तम उपयोग हुआ है, वही मनुष्य को अत्यंत आदर दिलाता है। मृत्यु के पश्चात् वह आनंद-पूर्वक रहता और उसके लाभों को भोगता है।

यही जीवन का सद्व्यय है।